हमार गाँव

अप्रैल – जून, 2014, वर्ष 13 : अंक 53

आई0एस0एस0एन0 नं0 0972–7825

इस अंक में

क्र0सं0	विषय	पृष्ठ सं0
1.	माननीय कुलपति जी का संदेश	– 03
2.	खाद्य संरक्षण, कब और कैसे	– 05
3.	धान के भण्डारण के लिए....	– 07
4.	स्वच्छ एवं अधिक दुग्ध उत्पादन के....	– 08
5.	टिण्डा की खेती	– 09
6.	खुरपका–मुंहपका रोग....	– 10
7.	हल्दी की खेती	– 11
8.	कद्दूवर्गीय सब्जियां	– 13
9.	व्यवसाय के लिए मधुमक्खी पालन	– 17
10.	गृह विज्ञान और कैरियर	– 19
11.	नाइट्रोजन स्थिरीकारक जैव उर्वरकों....	– 21
12.	महुआ	– 26
13.	कैल्शियम साधन और उपयोगिता	– 27
14.	मत्स्य रोगों के सामान्य लक्षण	– 28
15.	काशीफल या कुम्हड़ा की खेती	– 29
16.	मेंहदी की वैज्ञानिक खेती	– 32
17.	गुलकंद सेहत भी–स्वाद भी	– 34
18.	सदस्यता फार्म	

प्रधान संरक्षक

डॉ० राजेन्द्र बी० लाल

कुलपति,

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज

इलाहाबाद – 211 007

❖❖❖

संरक्षक

डॉ० एस० बी० लाल, प्रति कुलपति

डॉ० नाहर सिंह, निदेशक *(प्रसार)*

प्रो० (डॉ०) आरिफ ए० ब्राडवे, निदेशक *(शोध)*

❖❖❖

सलाहकार मंडल

प्रो० डॉ० एस० बी० लाल, प्रो० डॉ० आरिफ ए० ब्राडवे

प्रो० डॉ० डी० बी० सिंह, प्रो० डॉ० प्रमिला गुप्ता

प्रो० डॉ० पी० डब्ल्यू० रामटेके

प्रो० डॉ० वी० एम० प्रसाद

❖❖❖

प्रभागाध्यक्ष

प्रो० (डा०) आरिफ ए० ब्राडवे

❖❖❖

मुख्य संपादक

श्रीमती जे० जे० लाल

❖❖❖

डिजाइन एवं ले आउट

संदीप कुमार गोयल

लेख, सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु निम्न पते पर लिखें या सम्पर्क करें –

विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर,
टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज
इलाहाबाद – **211 007**
फोन :– **(0532) 2684278, 2684284, 2684290**

वार्षिक व्यक्तिगत सदस्यता शुल्क रू०. 100/– । संस्था सदस्यता शुल्क 200/– (डाक खर्च अतिरिक्त)

पत्रिका में प्रकाशित समस्त लेख व रचनाओं से प्रकाशक एवं सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। ये लेखकों के निजी विचार और सुझाव है।

एग्गीज़

शुद्ध, स्वच्छ, रोगाणु रहित, उच्च वैज्ञानिक विधि द्वारा उपचारित

स्टैन्डर्ड दूध
टोन्ड दूध
डबल टोन्ड दूध
सुगन्धित दूध
टेबिल बटर
कुकिंग बटर
पनीर
दही
खोआ
देशी घी
विभिन्न प्रकार की आइसक्रीम

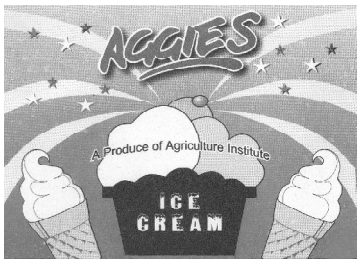

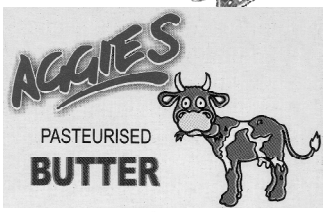

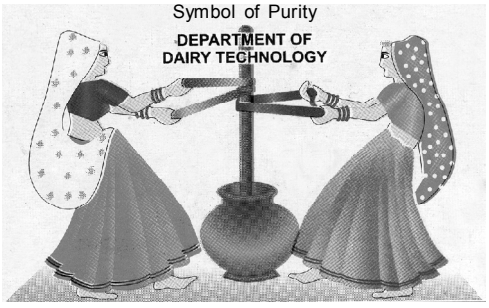

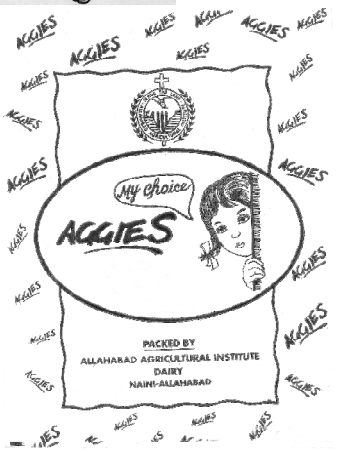

डेयरी अधीक्षक

स्टूडेन्ट्स ट्रेनिंग डेयरी

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज

इलाहाबाद - २११ ००७ (उ०प्र०) फोन - २६८४६०१

शादी एवं पार्टियों के शुभ अवसर पर सप्लाई की विशेष सुविधा उपलब्ध।

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नॉलॉजी एण्ड साइंसेज

Sam Higginbottom Institute of Agriculture, Technology & Sciences

(Formerly Allahabad Agricultural Institute)

(Deemed-to-be-University)

Allahabad - 211 007 U.P. India

रेव्ह (प्रोफे० डा०) राजेन्द्र बी० लाल, कुलपति
Rev. (Prof. Dr.) Rajendra B. Lal, Vice-Chancellor
Ph.D.Soil Science (Kansas State University, U.S.A.)
Ph.D.Ag. Botany (Kanpur)
PDF Envion. Chem (K.S.U., USA)
FISAC, Gamma Sigma Delta Scholar.

Office : 0532-2684284
Res. : 0532-2684587
Fax : 0532-2684593
E-Mail : vicechancellor@shiats.edu.in

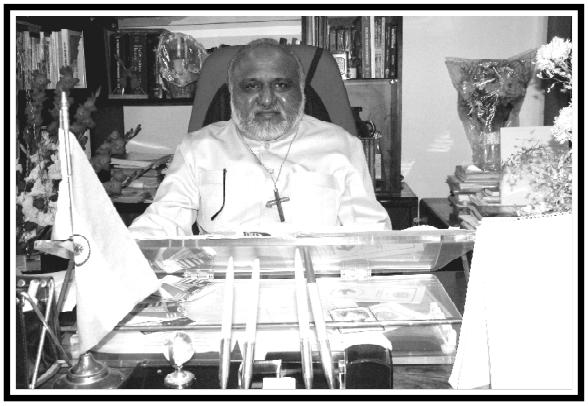

माननीय कुलपति का संदेश

कृषि अधिकांश भारतीय जनसंख्या के लिए आजीविका का प्रधान साधन है। यह सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में भी एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस खण्ड में कृषि से संबंधित जैसे : कृषि उत्पादन, मशीनरी अनुसंधान आदि दिए गए हैं। सरकार की नीतियों, योजनाओं और कृषि ऋण बाजार मूल्य, उर्वरक, भंडारण की सुविधाएं आदि भी उपयोगकर्ताओं के लिए उपलब्ध है। सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों जैसे : मत्स्य पालन, पशुपालन, फूलों की खेती, बागवानी, जैविक खेती आदि में नवीनतम विकास और पहल की है। कृषि खेती और वानिकी के माध्यम से खाद्य और अन्य सामान के उत्पादन से संबंधित है। कृषि एक मुख्य विकास था, जो सभ्यताओं के उदय का कारण बना, इसमें पालतू जानवरों का पालन किया गया और पौधों (फसलों) को उगाया गया, जिससे अतिरिक्त खाद्य का उत्पादन हुआ। इसने अधिक घनी आबादी और स्तरीकृत समाज के विकास को सक्षम बनाया। कृषि का अध्ययन कृषि विज्ञान के रूप में जाना जाता है (इससे संबंधित अभ्यास बागवानी का अध्ययन होर्टीकल्चर में किया जाता है)।

भारत में उगाई जाने वाली मसाले की फसलों में हल्दी का प्रमुख स्थान है। हमारे देश में इसका प्रयोग अनेकों प्रकार से किया जाता है। इसका प्रयोग सब्जी, मांस एवं मछली बनाने, आचार, मक्खन, पनीर, केक व जैली में सुगन्ध एवं रंग प्रदान करने के अतिरिक्त औषधि के रूप में किया जाता है। हल्दी त्वचा के रोगों व कटे भागों पर लगाने के लिए प्रयोग की जाती है। महुआ एक भारतीय उष्ण कटिबंधीय वृक्ष है, जो उत्तर भारत के मैदानी इलाकों और जंगलों में बड़े पैमाने पर पाया जाता है। यह एक तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष

है, जो लगभग 20 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ सकता है। इसके पत्ते आमतौर पर वर्ष भर हरे रहते है। यह मध्य भारत के उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन का एक प्रमुख पेड़ है। वर्तमान में भारत में 11.2 करोड़ टन दुग्ध का उत्पादन कर विश्व में लगभग एक दशक से प्रथम स्थान पर बना हुआ है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता मात्र 256 ग्राम है, जो अभी भी न्यूनतम आवश्यकता से कम है। दूध अपने आप में पूर्ण आहार है। हमारे देश में दूध का विशेष महत्त्व है।

गृह विज्ञान शिक्षा की वह विधा है जिसके अन्तर्गत पाक शास्त्र, पोषण, गृह अर्थशास्त्र, उपभोक्ता विज्ञान, बच्चों की परवरिश, मानव विकास, आंतरिक सज्जा, वस्त्र एवं परिधान, गृह निर्माण आदि का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक रूप से जब बालकों को कृषि या शॉप, (लोहारी, बढ़ईगिरी, आटो की मरम्मत) आदि की शिक्षा दी जाने लगी, तो बालिकाओं के लिये इस विषय के शिक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी। जैसा कि नाम से ही पता चलता है, गृह विज्ञान का संबंध गृह यानी कि घर से है। आम तौर पर लोग समझते है कि गृह विज्ञान घर की देखभाल और घरेलू सामान की साज–संभाल का विषय है। गृह विज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत और विविधता भरा है। इसका दायरा 'घर' की सीमा से कहीं आगे तक निकल जाता है। वास्तव में केवल यही एक ऐसा विषय है, जो युवा विद्यार्थियों को उनके जीवन के दो महत्तवपूर्ण लक्ष्यों के लिए तैयार करता है। घर तथा परिवार की देखभाल और अपने जीवन में कैरियर अथवा व्यवसाय के लिए पढ़ना। आजकल महिला तथा पुरूष दोनों ही घर तथा परिवार की जिम्मेदारियां समान रूप से निभाते है तथा अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए उपलब्ध संसाधनों के बेहतर उपयोग की तैयारी में भी बराबर की सहभागिता निभाते है।

गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की पढ़ाई करने के बाद आप अपने कार्य का बेहतर प्रबंधन कर सकते है। यदि ऐसा करते हुए आपको किसी प्रकार की समस्य पेश आती है, तो गृह विज्ञान उसे हल करने के लिए आपको सही दिशा निर्देश देगा। ऐसा करके आप का प्रभावशाली व्यक्ति बनते है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि के परिणाम स्वरूप रोजी–रोटी की समस्या के समाधान के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि आज के विकासशील युग में ऐसी योजनाओं का क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाय जिनके माध्यम से खाद्य पदार्थो के उत्पादन के साथ साथ भूमिहीनों, निर्धनों, बेरोजगारों, मछुआरों आदि के लिये रोजगार के साधनों का सृजन भी हो सके। उत्तर प्रदेश एक अर्न्तस्थलीय प्रदेश है। जहां मत्स्य पालन और मत्स्य उत्पादन की दृष्टि से सुदूरवर्ती ग्रामीण अंचलों में तालाबों व पोखरों के रूप में तमाम मूल्यवान जल सम्पदा उपलब्ध है। भारतीय कृषि अनेक विविधताओं के युक्त है। जलवायविक भिन्नता, मिट्टी की उर्वरता, परिवर्तनशील मौसम, खेती करने के ढंग आदि से भारतीय कृषि प्रभावित है। उत्पादन की मात्रा तथा कृषि ढंग के आधार पर भारत की कृषि को शुद्ध और संकर कृषि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। शुद्ध कृषि मूलतः परंपरागत प्रकार की प्रकार की कृषि है जिसके द्वारा कृषकों की केवल मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है।

रेव्ह0 (प्रो0डॉ0) राजेन्द्र बी0 लाल)
कुलपति
सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर,
टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज
(कृषक मित्र)

खाद्य संरक्षण कब और कैसे?

चांदनी वरनबाल
शोध छात्रा
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 वरजीनिया पॉल
सह–प्राध्यापिका
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

अधिकतर जगहों पर हम देखते हैं कि कुछ व्यक्तियों को खाद्य संरक्षण का ज्ञान न होने के कारण वो खाद्य पदार्थों का उपयोग पूरी तरह से नहीं कर पाते और पदार्थों को व्यर्थ करते हैं, जो कि हमारे घर के बजट को भी बिगाड़ देता है। इसलिए हम सभी को खाद्य संरक्षण के सिद्धान्त को समझना बहुत ही आवश्यक है। बहुत से खतरनाक रसायन और खनिज लवण पानी के साथ संयुक्त होकर मिट्टी को विषाक्त बना देते हैं, जिससे पेड़–पौधों में भी विषाक्तता फैल जाती है। कुछ स्वास्थय के खतरे खाद्य संरक्षण के सिद्धान्त को अपनाकर दूर किये जा सकते हैं। खाद्य संरक्षण के महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

1. खाद्य पदार्थों का चुनाव :– यह खाद्य संरक्षण का पहला चरण है। किसी भी भोज्य पदार्थ को खरीदने से पहले यह देख लेना चाहिए कि उसकी पैदावार के लिए कौन–सा तरीका अपनाया गया है। स्थानान्तरण, खरीददारी, भौगोलिकी, स्थानीय उपस्थिति, परिवार की खरीदने की क्षमता और प्रत्येक व्यक्ति की रूचि को देखकर खाद्य पदार्थों का चुनाव करें।

गलत खाद्य पदार्थों के चुनाव से बचने के तरीके:–

- हमेशा ताजे, मौसम के अनुकूल सब्जियाँ और फल खरीदना।
- समुद्र और प्रदुषित नदी के आस–पास की फसलों का उपयोग नहीं करना चाहिए।
- दाल और अनाजों को विश्वसनीय स्त्रोत खरीदना चाहिए।
- दाल और दूध से बने पदार्थों को स्वच्छ पशुधन से प्राप्त करना।
- मॉस और मुर्गा स्वस्थ पशुओं का ही उपयोग करना चाहिए। क्योंकि ये बीमारी का कारण बन सकते हैं।

2. खाद्य पदार्थों का संग्रहण :– खाद्य पदार्थों को खाने से पहले या पकाने से पहले ताजा, स्वादिष्ट और आकर्षक होना बहुत आवश्यक है। इसलिए खाद्य पदार्थों का संग्रह सही तरीके से होना चाहिए। क्योंकि गलत संग्रह से उसके पोषक मूल्य, स्वाद और रंग में बदलाव आ जाता है और भोजन में जीवाणु और कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं।

खाद्य संग्रहण की विधि :–

- सब्जियों और फलों को हमेशा बाजार से लाने के बाद पानी में धुलना और उसे प्रशीतक में संग्रह करने से पहले 30 मिनट तक नमक के पानी में भिगोना चाहिये।
- सब्जियों जैसे – हरी पत्तेदार सब्जियाँ (पालक, मेथी, गोभी, चौलाई, साग), फल जैसे (केला, अंगूर, संतरा) को पहले उपयोग में लाना चाहिए। क्योंकि ये जल्द ही खराब हो जाते हैं।
- मॉस, मछली को फ्रीजर में संग्रहित करना चाहिए।
- खाद्य पदार्थों को रसोईघर में खुला न छोड़कर उन्हें प्रशीतक (रेफ्रीजेरेटर), ठण्डे पानी या माइक्रोवेव में रखना चाहिए।
- छाल और अनाजों को बन्द डिब्बे में रखना चाहिए।

3. खाद्य प्रक्रिया :– खाद्य प्रक्रिया की तैयारी पकाने के लिए लोगों की संख्या पर, कीमत, खाद्य पदार्थ की किस्म और समय के साथ पूरी होती है।

खाद्य प्रक्रिया की तैयारियाँ :–

- काटने से पहले खाद्य पदार्थों को पानी में धुलना, जिससे गन्दगी और कीटाणु निकल जाते हैं।

– काटने के बाद पदार्थों को नहीं धुलना चाहिये। इससे पोषक तत्वों की हानि होती हैं।
– पकाने से पहले खाद्य पदार्थों को 30 मिनट तक भिगो देना चाहिये, जिससे खाद्य पदार्थों की मायनशीलता, पोषक तत्व, इन्जाइम को क्रियाएँ निष्क्रिय होती हैं और समय, शक्ति की बचत होती है। लेकिन इन्हें बहुत ज्यादा समय तक भिगोने से पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं और पदार्थ सड़ने लगता है।
– जहाँ तक सुविधा हो सब्जियों को छिलके सहित पकाना चाहिए। क्योंकि छिलके में उपस्थित पोषक तत्वों की हानि होती है।
– भोजन को साफ बर्तनों में ढंककर पकाना चाहिए। इससे पोषक तत्व नष्ट नहीं होते और भोजन जल्दी पक जाता है।
– भोज्य पदार्थों को गहरी चिकनाई में नहीं तलना चाहिए। क्योंकि उससे हानिकारक खनिज लवण बनते हैं, जो असंतृप्त वसा को संतृप्त वसा में बदल देते हैं। जिससे ये वसा शरीर के रक्त में धुलकर पूरे शरीर में फैल जाते हैं और ह्रदय की बीमारियों को पैदा करते हैं। हमें असंतृप्त वसा का उपयोग करना चाहिए। जैसे – सोयाबीन का तेल, मूँगफली का तेल, ओलिव ऑयल, का उपयोग करना चाहिए।

खाद्य पदार्थों को हम अन्य महत्वपूर्ण सुरक्षा विधियों का उपयोग करके बचा सकते हैं :–

1. प्रशीतक (रेफ्रीजेरेटर) का उपयोग :– कई सामान्य फल, सब्जियाँ और अण्डे जो सामान्य तापक्रम पर शीघ्र ही खराब हो जाते हैं, उन्हें प्रशीतक संरक्षण में (32–48 F) में कुछ महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। मॉस और मछली को फ्रोजन स्थिति में 0–1 F पर कुछ महीनों तक रखा जाता है।

2. निर्जलीकरण और सुखाना :– खाद्य पदार्थों का निर्जलीकरण करके उन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जाता है। जैसे – फलों और सब्जियों को धूप में या फिर मशीन में सुखाकर सुरक्षित रखते हैं। इससे खाद्य पदार्थों को किसी भी मौसम में उपलब्ध कराया जा सकता है। समय, श्रम और धन की बचत होती है। परिवहन में भी आसानी होती है। खाद्य पदार्थों की सुखाकर सुरक्षित रखने से उनका पोषक मूल्य भी बढ़ जाता है और पकाने और एकत्र करने में भी आसानी होती है।

3. सीलबन्द डिब्बों का उपयोग :– इस विधि में भोज्य पदार्थों की सुरक्षा सीलबंद डिब्बों में पैक करके की जाती है, जैसे – फलों में सेब, आम, संतरे, नाशपाती, अन्नानास और सब्जियों में जैसे – सेम, बंदगोभी, गाजर, फूलगोभी, मटर, आलू को डिब्बों में बन्द करके सुरक्षित रखा जाता है। डिब्बों में बन्द करने की विधियों में निम्नलिखित बातें अपनाई जाती है –

धोना, छीलना, प्रचूषण और सीलबन्द करना और अन्त में उच्च संसाधन और ठंण्डा करके पैकिंग का कार्य पूरा होता है।

4. किण्डवन और मसाले का उपयोग :– कुछ फलों और सब्जियों को सुरक्षित रखने के लिए मसाले, नमक और सिरका डालकर अचार बनाते हैं। जिसमें अधिक मात्रा में तेल और नमक डालते हैं। जिससे खाद्य पदार्थों में होने वाली एन्जाइम क्रिया रूप जाती है और पदार्थ अधिक समय तक सुरक्षित रहता है। मीठे अचार को सुरक्षित रखने के लिए सिरके के साथ शक्कर का उपयोग करते हैं।

5. शक्कर का उपयोग :– सामान्यतः फलों की सुरक्षा शक्कर मिलाकर की जाती है, जैसे – जैम, जेली, साइट्रस और फलों के शरबत बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं। जिसका उपयोग हम सुबह के नाश्ते और दोपहर के खाने में भी कर सकते हैं।

क्योंकि मैं उस अनुग्रह के कारण जो मुझ को मिला है, तुम में से हर एक से कहता हूं; कि जैसा समझना चाहिए, उससे बढ़कर कोई भी अपने आपको न समझे पर जैसा परमेश्वर ने हर एक को परिमाण के अनुसार विश्वास दिया है; वैसा ही सुबुद्धि के साथ अपने को समझे। क्योंकि जैसे हमारी एक देह में बहुत से अंग हैं, और सब अंगों का एक ही सा काम नहीं। वैसा ही हम जो बहुत हैं, मसीह में एक देह होकर आपस में एक दूसरे के अंग हैं। और जब कि उस अनुग्रह के अनुसार जो हमें दिया गया है, हमें भिन्न भिन्न वरदान मिले हैं, तो जिसको भविष्यद्वाणी का दान मिला हो, वह विश्वास के परिमाण के अनुसार भविष्यवाणी करे। यदि सेवा करने का दान मिला हो, तो सेवा में लगा रहे, यदि कोई सिखाने वाला हो, तो सिखाने में लगा रहे। जो उपदेशक हो वह उपदेश देने में लगा रहे; दान देने वाला उदारता से दे, जो अगुवाई करे, वह उत्साह से करे, जो दया करे, वह हर्ष से करे। प्रेम निष्कपट हो; बुराई से घृणा करो; भलाई में लगे रहो।

रोमियो 12 : 3–9

धान के भण्डारण के लिए कुछ बातें

बिनीता एम0 बारा
पी0एच0डी0 स्कालर
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय
शियाट्स, इलाहाबाद

बिनीता देवी
पी0एच0डी0 स्कालर
आनुवांशिकी और पादप प्रजनन
शियाट्स, इलाहाबाद

डा0 ए0 के0 चौरसिया
सह–प्रवक्ता
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय
शियाट्स, इलाहाबाद

भरपूर उपज प्राप्त करने के लिए किसान जी तोड़ मेहनत करता है। परंतु धान व अनाज के दुश्मन कीट इत्यादि उसे उसकी मेहनत का लाभ नहीं लेने देते। इससे किसान का नुकसान तो होता ही हैं। यह नुकसान सिर्फ किसान का ही नहीं बल्कि सारे राष्ट्र का है और उसका मुख्य कारण हैं, धान की उसके दुश्मनों से सुरक्षा न होना और उसका रख रखाव के लिए सही प्रबंध का न होना।

धान की मात्रा गणों में नुकसान करने वाले मुख्य कारक कीड़े – मकोडे एवं नमी हैं, कीड़ों एवं जीवाणुओं के द्वारा किये गये नुकसान से धान का भार कम होता हैं। अतः धान की कटाई के बाद उसे गोदामों में रखने तक अनेक बातों को ध्यान में रखना चाहिए, जो निम्नानुसार हैं–

1. कटाई के बाद धान को भंडार में रखने से पहले हल्की धूप में सुखाना चाहिए। क्योंकि तेज धूप में सुखाने में चावल में दरारें पड़ जाती है तथा टूटन भी बहुत निकलती हैं। धान इतना सुखाया जाए कि दांत के नीचे दबाने पर कट की आवाज से टूटे, अगर धान केवल कुचल कर रह जाए, तो उसे और सुखाना चाहिए। गीले धान को गोदामों में रखने पर फफूंद लग सकती हैं व सड़ सकता हैं अलावा उसके डल्ले बन सकते हैं।
2. बोरों में धान रखने से पहले देख लेना चाहिए कि बोरों में कीड़े आदि तो नहीं हैं, बोरे अच्छे साफ सुथरे होने चाहिए।
3. बोरो को जमीन की नमी से बचाने के लिए बोरों के नीचे पालीथीन की चादर, बांस की चटाई लकड़ी की चटाई लकड़ी की पटिए आदि रखना चाहिए।
4. बोरों को दीवार की छत से सटा कर नहीं रखना चाहिए।
5. गोदामों में धान रखने से पहले उसकी दीवारों और छत की दरारों को बंद कर देना चाहिए। जिससे गोदामों में नमी अथवा पानी न आ सके।
6. दीवारों आदि के उखड़े प्लास्टर और ईंटों के बीच कीड़े छिपे हो सकते हैं। अतः उनकी मरम्मत करके अच्छी तरह लिपाई कर देनी चाहिए।
7. रोशनदान और खिड़कियाँ ऐसी होनी चाहिए जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर ऐसा बंद किया जा सके, जिससे हवा और पानी का प्रवेश न हो।
8. धान के गोदाम में कीटनाशक दवाएं खाद आदि नहीं रखने चाहिए। क्योंकि ये उसे प्रभावित कर खराब कर सकते हैं।
9. गोदाम में धान रखने से पहले मेलाधियान घोल (1:100) का छिड़काव करना चाहिए, 30 फीट लंबे चौड़े स्थान के लिए घोल की तीन लीटर मात्रा होनी चाहिए।
10. धान को सीमेंट, कांक्रीट, एल्यूमिनियम या धातु की बनी कोठियों से सुखाकर रखना चाहिए, इससे अनाज चूहों, पक्षियों, कीड़े, फफूंदी और नमी से सुरक्षित रहता है, धातु की बनी कोठियों में रखे जाने वाले अनाज की पौष्टिकता बनी रहती हैं तथा आग का खतरा भी नहीं रहता
11. प्रति इकाई भंडारण की कीमत आर्थिक दृष्टि से कम होनी चाहिए
12. आवश्यकता पड़ने पर धान रखने एवं निष्कासित करने के लिए यंत्र लगे होने चाहिए।

स्वच्छ एंव अधिक दुग्ध उत्पादन के कुछ सूत्र

सुबोध यादव
एस0एम0एस0 (पशु पालन)
के0वी0के0, शियाट्स, इला0

डा0 एस0डी0 मेकार्टी
प्रोग्राम समन्वयक
के0वी0के0, शियाट्स, इला0

वर्तमान में भारत में 11.2 करोड़ टन दुग्ध का उत्पादन कर विश्व में लगभग एक दशक से प्रथम स्थान पर बना हुआ है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता मात्र 256 ग्राम है, जो अभी भी न्यूनतम आवश्यकता से कम है। दूध अपने आप में पूर्ण आहार है। हमारे देश में दूध का विशेष महत्व हैं।

स्वच्छ दूध उत्पादन :– स्वच्छ दूध उत्पादन के लिये आवश्यक है कि दूध में सूक्ष्म जीवाणुओं विशेषकर बैक्टीरिया का संक्रमण कम से कम हों। दूध देने वाली गायों, भैसों व बकरियों में थनैला रोग हो जाता हैं। थनैला रोग के प्रमुख कारण स्ट्रैप्टोकोकाई, स्टैफलोकाकाई, ई–कोलाई,स्यडोमानस, वैसलीस, कीरिनी, वैक्टीरियम आदि जीवाणु होते हैं। अतः थनैला रोग की यथा शीघ्र पहचान और इलाज करना आवश्यक है।

पशु से दूध दूहते समय या उसके बाद पशुपालकों द्वारा प्रयोग करने बीच हवा, पानी, धूल कण, गोबर, मिट्टी के सम्पर्क से दूध में जीवाणु संक्रमण की संभावना रहती है। पशुशाला में बाहर से सीधी हवा नहीं आनी चाहिये न ही धूल आदि उड़ती हो। दोहन क्रिया प्रातः काल या सायं काल उस समय करनी चाहिये। जब हवा की गति धीमी हो पशुशाला में मक्खी, मकड़ी आदि न होने चाहिये। दूध की दोहन क्रिया के मध्य दूध को स्वच्छ मलमल के कपड़े से ढंककर रखें, जिससे धूल, मक्खी आदि दूध में न गिरें। दूध को स्वच्छ मलमल के कपड़े से छान कर या शीघ्र उबाल लें और उसके बाद ढंक कर रखें। ठंडा होने पर रेफ्रिजरेटर में रखें। जिन बर्तनों में दूध निकाला जाता है उनको भी स्वच्छ होना चाहिये। इन बर्तनों को सर्फ आदि गर्म पानी में बनायें घोल से अच्छी प्रकार धोकर धूप में सुखाना चाहिये। दूध निकालने से पहले बर्तनों को एक गर्म पानी से धोना चाहिये, दूध दोहने वाले बर्तन कम चौड़े मुंह के होने चाहिये। जिसमें धूल, मिट्टी गोबर आदि गिरने की संभावना कम रहें। प्रति पशु दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि ऐसी नस्ल के पशु रखें जाये, जो अधिक ये अधिक दूध देते हो। उदाहरण के लिये गायों में साहीवाल, सिंधी, गीर, कांक्रोच, रोज, राठी, थारपरकर में दूध उत्पादन हरियाणा नस्ल भी अपेक्षा अधिक होता है। भैसों में मुर्रा, नीली, रावी, सूरत, जाफरावादी अच्छा दूध देती हैं।

दूध उत्पादन के लिये पशुओं को उचित आहार जिसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, फास्फोरस, अन्य सूक्ष्म तत्व विटामिन आदि होना चाहिये। सूखे चारे के साथ–साथ 30 से 50 प्रतिशत तक हरा चारा जैसे– बरसीम, जई, लोबिया, मक्का, अगोला, रिचका आदि अवश्य दें अधिक दूध उत्पादन के लिये प्रति पशु 60 ग्राम मिनरल मिकचर प्रति दिन देना आवश्यक हैं। दूध देने वाले पशुओं के आस पास का वातावरण शान्ति होना चाहिये विशेषकर दूध दूहने के समय पर पशुशाला के अन्दर कुत्ते बिल्ली आदि का प्रवेश पर पूरी तरह रोक होनी चाहिये।

पशुओं को खूब पानी पीने के लिये उपलब्ध हो। अधिक सर्दी, गर्मी तथा आर्दता के दिनों में पशुओं का दूध उत्पादन कुछ कम हो जाता हैं। अतः इनके बचाव करना आवश्यक है। सर्दी व ठंड से बचाव के लिये पशुशाला के अन्दर धूप, बिछावन तथा खिड़कियों पर बोरा लगाना चाहिये। गर्मी तथा आद्रता से बचाव के

शेष पृष्ठ सं० 18--पर

टिण्डा की खेती

निमिशा शेरिल सिंह
बिशप वेशकॉट गर्ल्स स्कूल
नामकुम,
राँची

प्रो0 (डा0) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

टिण्डा की खेती उत्तरी भारत में, विशेषकर पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्रप्रदेश में की जाती है। टिण्डा की खेती के लिए गर्म एवं औसत आर्द्रता वाले क्षेत्र सर्वोत्तम होते हैं। बीज के जमाव व पौधों की बढ़वार के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त है। इसकी खेती गर्मी एवं वर्षा दोनों ही ऋतुओं में की जाती है।

भूमि का चयन :– इसकी खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जाती है, लेकिन बलुई दोमट या दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। गुणवत्तायुक्त तथा अधिक उपज के लिए भूमि का पीएच मान 6.0–7.0 के बीच होना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में तीन जुताई देशी हल से या कल्टीवेटर से करते हैं। पानी कम या अधिक न लगे इसके लिए खेत को समतल कर लेते हैं।

उन्नतशील किस्में :– रंग के आधार पर टिण्डा हल्के हरे रंग व गहरे हरे रंग का होता है। इसकी उन्नतशील किस्में अर्का टिण्डा, टिण्डा एस–48, हिसार सलेक्शन–1, बीकानेरी ग्रीन मुख्य है।

बुवाई का समय :– उत्तर भारत में टिण्डे की मुख्य दो फसलें की जाती हैं। टिण्डा की बुवाई ग्रीष्मकालीन फसल के लिए फरवरी–मार्च व वर्षाकालीन फसल के लिए जून–जुलाई में की जाती है।

बीज व बीज की रोपाई :– इसकी एक हेक्टेयर फसल की बुवाई के लिए 5–6 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है। रोग नियंत्रण के लिए बीजों को बोने से पूर्व बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करके बोना चाहिए। तैयार खेत में 1.5–2.0 मीटर की दूरी पर 30–40 सेमी चौड़ी तथा 15–20 सेमी गहरी नालियां बना लेते हैं। नालियों के दोनों किनारों पर 30–45 सेमी की दूरी पर 2 सेमी की गहराई पर बीजों की बुवाई करते हैं। अंकुर निकल आने पर आवश्यकतानुसार छंटाई कर दी जाती है। कपास, मक्का, भिण्डी आदि के साथ टिण्डा की मिश्रित खेती भी की जाती है।

खाद का प्रबन्धन :– साधारणतया खेती की तैयारी के समय गोबर की सड़ी खाद 150–200 कुंतल प्रति हेक्टेयर देना लाभप्रद रहता है। टिण्डा की अधिक उपज के लिए 80–100 किग्रा नत्रजन, 40 किग्रा फास्फोरस तथा 40 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा को अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए तथा शेष 2/3 नत्रजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर टापड्रेसिंग के रूप में प्रथम बार बुवाई के 25–30 दिन बाद तथा 40–45 दिन पर फूल आने के समय देना चाहिए।

शस्य क्रियायें एवं खरपतवार नियंत्रण :– टिण्डा के जमाव से लेकर शुरुआत के 30–35 दिनों तक निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। रासायनिक खरपतवारनाशी के रूप में पेंडीमेथलीन 3.5 ली0 प्रति हे0 की दर से 1000 ली0 पानी में मिलाकर घोल जमीन के ऊपर बुवाई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करना चाहिए। इससे बुवाई के लगभग 30–40 दिन बाद खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है। बुवाई के लगभग 30–35 दिन बाद नालियों व थालों की गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

सिंचाई एवं जल प्रबन्धन :– ग्रीष्मकालीन फसल के लिए 4–7 दिन के अंतराल पर तथा वर्षाकालीन फसल

शेष पृष्ठ सं० 20--पर

खुरपका– मुंहपका रोग
उपचार एवं बचाव

अखण्ड प्रताप
शोध छात्र,
एस0एस0ए0एच0 एवम् डी0 शियाट्स, इलाहाबाद (उ0प्र0)

डॉ0 पी0 कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
एस0एस0ए0एच0 एवम् डी0 पोल्ट्री प्रोडक्शन विभाग शियाट्स, इलाहाबाद (उ0प्र0)

विपिन कुमार मिश्रा
एम0एस0सी0 छात्र,
एस0एस0ए0एच0 एवम् डी0 शियाट्स, इलाहाबाद (उ0प्र0)

खुरपका–मुंहपका जिसको एफथस ज्वर, खुरहा, खंगवा या पका रोग के नाम से भी जाना जाता है। तेज बुखार वाला, अत्यधिक छुआछूत वाला विषाणुजनित रोग है।

इसमें रोगनाशक पशुओं और शूकरों के मुंह की श्लेष्मिक झिल्ली, खुरों के बीच के स्थान, कारोनरी पट्टी इत्यादि में छाले बन जाते हैं। रोग से पीड़ित वयस्क पशुओं में मृत्यु दर तो अत्यधिक नहीं होती है, परन्तु अस्वस्थता प्रतिशत अधिक होने और उससे उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण इस रोग का बहुत अधिक आर्थिक महत्व है। संकर पशुओं और संकर प्रजनन द्वारा उत्पन्न पशुओं में रोग से अत्यधिक हानि होती है। भारत में खुरपका–मुंहपका रोग का प्रकोप होने के कारण विदेशों में हमारे पशुओं की खालों और अन्य उत्पादनों पर रोक लगी होने से भी आर्थिक हानि होती है।

कारण :– इस रोग का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म, गोल विषाणु है, जो कि पिकोरना समूह के विषाणुओं का सदस्य है। खुरपका–मुंहपका रोग का विषाणु अब तक ज्ञात सभी विषाणुओं से आकृति में छोटा है। इसका आकार 7 से 21 मिली माइक्रान है। इस विषाणु के 7 प्रकार तथा अनेक उप प्रकार हैं।

हमारे देश में खुरपका–मुंहपका रोग मुख्यतः ए, ओ, सी व एशिया–1 द्वारा फैलता है। खुरपका–मुंहपका रोग के कई अन्य सहयोगी कारक हैं। नम वातावरण, परपोशी की संवेदनशीलता, पशुओं का आवागमन, लोगों का आवागमन, पास–पड़ोस के क्षेत्रों में रोग का प्रकोप, रोग नियंत्रण इत्यादि का सीधा सम्बन्ध रोक के आघटन से है। किसी एक प्रकोप में कई प्रकार के विषाणु मिल सकते हैं।

यह रोग गोपशु, भेड़, बकरी, भैंस, शूकर, एन्टीलोप्स, याक, मिथुन इत्यादि में होता है। समस्त पालतू पशुओं में गोपशु, भेड़, बकरी, शूकर, भैंस इत्यादि में रोग के प्रति संवेदनशीलता में अन्तर होता है। भारत के 20–30 प्रतिशत देशी पशु तथा 50–60 प्रतिशत बछड़े, बछिया खुरपका–मुंहपका रोग के प्रति संवेदनशील हैं। विदेशी नस्ल के पशु इस रोग के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। इस रोग का फैलाव वायु, जल, (पीने से), दूषित भोजन, सीधे संपर्क, पशुशाला में काम करने वाले व्यक्तियों, दूषित कपड़ों या बची हुयी भोजन सामग्री द्वारा होता है। घुमन्तू पक्षियों द्वारा खुरपका–मुंहपका रोग एक देश से दूसरे देश में फैलता है। विदेशी नस्ल के गोपशुओं में इस रोग की अस्वस्थता और मृत्युदर देशी पशुओं की तुलना में अधिक होती है। भेड़–बकरियों में यह रोग होता तो है, परन्तु उसकी जानकारी नहीं हो पाती है।

लक्षण :– तेज बुखार (103–105 F), जुबान, मसूड़ों, ओठों, नथुने, ओठों के संधि स्थल इत्यादि स्थानों में छाले बनना इस रोग के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। रोगी पशुओं के मुंह से अधिक पारदर्शी लार गिरती है। चपचपाहट की ध्वनि उत्पन्न होती है। भूख कम लगना, जुगाली कम करना, अधिक प्यास, कमजोरी भी इस रोग के लक्षण हैं। कुछ दिनों के बाद पैरों में भी घाव व सड़न उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी पशुओं में लगड़ापन दिखाई पड़ता है। रोग से पीड़ित पशुओं की ध्यानपूर्वक चिकित्सा न करने पर खुर गिरना, निमोनिया, जठर–आंत्र रोग मवादयुक्त

शेष पृष्ठ सं० 31--पर

हल्दी की खेती

दीपांशू
कनिष्ठ शोध सहायक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 देवी सिंह
सहायक अध्यापक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

भारत में उगाई जाने वाली मसाले की फसलों में हल्दी का प्रमुख स्थान है। हमारे देश में इसका प्रयोग अनेकों प्रकार से किया जाता है। इसका प्रयोग सब्जी, मांस एवं मछली बनाने, अचार, मक्खन, पनीर, केक व जेली में सुगन्ध एवं रंग प्रदान करने के अतिरिक्त औषधि के रूप में किया जाता है। हल्दी त्वचा के रोगों व कटे भागों पर लगाने के लिए प्रयोग की जाती है। हिन्दुओं में हल्दी का प्रयोग धार्मिक अवसरों पर भी किया जाता है। यह एक ऐसी फसल है, जो खेतों के अतिरिक्त बागों के साये में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। हल्दी का पीलापन उसमें उपस्थित कुरक्यूमिन के कारण होता है।

भारत में हल्दी की खेती आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, बिहार एवं केरल में मुख्य रूप से की जाती है। उ0प्र0 में हल्दी की खेती वाराणसी, जौनपुर, मिर्जापुर, गाजीपुर, देवरिया, बलिया, आजमगढ़, मऊ, गोरखपुर, बस्ती, बाराबंकी एवं गोण्डा जनपदों में बहुतायत से की जाती है।

उन्नत प्रजातियॉ : हल्दी की अमलापुरम, कस्तूरीपास्पु, मधुकर, कृष्णा, सुगन्धम, सुगना, राजेन्द्र सोनिया, रोमा, सुदर्शन अच्छी प्रजातियॉ है। प्रदेश में नाडिया, पड़रौना, देहरादून एवं बरूआसागर स्थानीय प्रजातियॉ है। कोठा–पेटा नामक प्रजाति गहरे पीले रंग वाली, अच्छी उपज देने के साथ–साथ लीफ ब्लाच रोग के प्रति अवरोधी है।

भूमि का चुनाव :– हल्दी की खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली, जीवांश पदार्थ युक्त, बलुई दोमट या दोमट मिट्टी अच्छी होती है। भारी भूमियों में जहॉ जल निकास का अच्छा प्रबन्ध नहीं होता, हल्दी की खेती मेड़ों पर की जाती है। बागों में भी यदि छाया बहुत अधिक न हो तो इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती हैं।

खेत की तैयारी :– हल्दी के लिए खेत की अच्छी तैयारी होनी चाहिए। मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने के बाद 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करके खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए। जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल बनाना आवश्यक है।

खाद एवं उर्वरक :– हल्दी की फसल भूमि से काफी अधिक मात्रा में पोषक तत्वों को लेती है। अच्छी उपज के लिए जुताई से पूर्व प्रति हेक्टेयर 250–300 कुन्तल गोबर की खाद और 20 कि0ग्रा0 मिथाइल पैराथियान जुताई के समय भूमि में डालकर अच्छी तरह मिला दिया जाता है। हल्दी में रासायनिक खाद के रूप में प्रति हेक्टेयर 80–120 किग्रा नाइट्रोजन, 80 किग्रा फास्फेट व 80 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती है। इसमें से सम्पूर्ण फास्फोरस व पोटाश तथा 40 किग्रा नाइट्रोजन अन्तिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन की मात्रा दो किश्त में बोआई के 35–40 दिन बाद इसके एक माह बाद कतारों के बीच में डाल देनी चाहिए।

बीज तथा बोआई –

बोने का समय :– हल्दी की बोआई अप्रैल के दूसरे पखवाडे से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है, परन्तु अप्रैल से मई का माह सबसे अच्छा होता है। अप्रैल से पहले बोआई करने पर कम तापमान के कारण कन्दों का जमाव अच्छा नहीं होता और जून में बोआई करने पर पौधों की बढ़वार अच्छी नहीं होती है। जिससे उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बागों के साये में बोआई हर हाल में मई तक कर दें।

बीज की मात्रा :– बोआई के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त प्रकन्दों का चयन करना चाहिए। बोआई के लिए प्रकन्द का वजन 20–25 ग्राम होना चाहिए तथा प्रत्येक गॉठ में

2–3 आंखे अवश्य हों। इस प्रकार चुने हुए बीज की प्रति हेक्टेयर 15–20 कुन्तल मात्रा आवश्यक होती है।

बीज शोधन व बोआई :– बोआई से पूर्व प्रकन्द को 0.5 प्रतिशत एगलाल (5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) या 0.25 प्रतिशत एरेटान (2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) या 0.2 प्रतिशत डाईथेन एम 45 (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) के घोल में उपचारित करके साये में सुखा लें। समतल भूमि में 5–8 मीटर लम्बी और 2–3 मीटर चौड़ी क्यारियॉ बना लें। फिर समतल क्यारियों में 30–40 सेमी की दूरी पर बनी लाइनों में 20–25 सेमी की दूरी पर 4–5 सेमी की गहराई में उपचारित कन्दों की बोआई करें। बुवाई मेड़ों पर भी की जाती है। इसके लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45–60 सेमी रखी जाती हैं इस विधि में सिंचाई तथा खुदाई में सुविधा रहती है। बोआई के बाद खेत में नमी बनाये रखने के लिए सूखी घास, पत्ती या भूसे को बिछावन के रूप में प्रयोग करें। ऐसा करने से जमाव 15–20 दिन के अन्दर हो जाता है।

देखभाल :– गर्मियों में फसल को अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। बोआई से वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने तक 4–5 सिचाईयॉ कर देनी चाहिए। वर्षा ऋतु के बाद प्रत्येक 20–25 दिन के अन्तर पर सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है।

अच्छी उपज के लिए खेत का खरपतवार रहित होना आवश्यक है। इसके लिए 2–3 निराई–गुड़ाई पर्याप्त रहती है। क्योंकि बाद में फसल बढ़कर भूमि को ढंक लेती है और खरपतवार नहीं उग पाते हैं। भूमि में उर्वरक की टाप ड्रेसिंग करने के बाद पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इससे कन्दों के बढ़ने में सुविधा रहती है, साथ ही जल निकास में भी सुधार होता है।

फसल पर प्रायः थ्रिप्स कीट का प्रकोप होता है, जिससे पत्तियॉ सूखने लगती है। इसकी रोकथाम के लिए 1.0 लीटर डाईमेथोएट (30 ई0सी0) को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें, आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव भी करें। इसके अतिरिक्त फफूंद जनित पर्ण रोग बीमारी जिसके प्रकोप से पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं, जो बाद में भूरे होकर सूखने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए फाइटोलान या ब्लाइटाक्स के 0.3 प्रतिशत घोल का अगस्त एवं सितम्बर माह में छिड़काव करें।

खुदाई एवं भण्डारण :– हल्दी की गांठ 9–10 माह में तैयार हो जाती है। जब फसल की पत्तियॉ सूखने लगें, तब खुदाई करें। सीधे खेत में बोई गई फसल से प्रति हेक्टेयर 200–250 कुन्तल तथा बागों में बोई गई फसल से 100–150 कुन्तल कच्ची गांठ का उत्पादन हो जाता है। खुदाई के बाद इन गांठों को छाया या हवादार कमरों में ढेर लगाकर भंडारित किया जा सकता है। ढेर को ऊपर से हल्दी की सूखी पत्तियों से ढंककर गोबर तथा मिट्टी मिलाकर लेप लगा दें। किसी छायादार स्थान पर जहॉ पानी न लगता हो, गढ्ढा बनाकर भी इसे भण्डारित किया जा सकता है। लगभग एक मीटर गहरे खुदे गड्ढे की सतह पर 3–5 सेमी सूखे भूसे को बिछायें तथा उसके ऊपर गांठों को भर दें। भूमि की सतह पर चारों तरफ थोड़ी मेड़ बनाकर बांस के टट्टर से ढ़ककर ऊपर से मिट्टी डाल दें। इससे गड्ढे से निकलने वाली गैस बराबर निकलती रहती है।

ऐसे करें गांठों का शोधन –

1. **गांठों की सफाई एवं सुखाना** :– खोदे गये गुच्छे से प्रत्येक गांठ को अलग करके मिट्टी को अच्छी तरह झाड़ दें तथा पक्के टैंक या ड्रम में पानी भर कर अच्छी तरह धुलाई करें तथा धुली गांठों को पक्की फर्श या त्रिपाल पर फैला कर सुखा लें।
2. **गांठों को उपचारित करना** :– साफ एवं सूखी गांठों को बांस की टोकरी या छिद्रयुक्त क्रेटों में भरकर एक बड़े कड़ाह में, जिसमें टोकरी या क्रेट डूब जाये, उसमें 0.1 प्रतिशत सोडा (सोडियम कार्बोनेट) का घोल बना कर भर दें। घोल में गांठों को तब तक उबालें जब तक मुलायम न हो जायें। जब गांठों से एक विशेष महक निकलने लगे, तो गांठों को टोकरी सहित निकाल लें। इस समय गांठों का रंग निखर कर पीला हो जाता है। गांठों को साफ सुथरी पक्के फर्श पर त्रिपाल फैला कर कड़ी धूप में सुखायें। पूर्ण रूप से गांठों को सूखने में 10–15 दिन लगते हैं।
3. **गांठों को पालिस करना** :– गांठों को आकर्षक करने के लिए पालिस करना अति आवश्यक होता है। इसके लिए 10–15 किग्रा सूखी गांठ को बोरे में भरकर धीरे–धीरे पैर से रगड़ें। इससे गांठों में लगी जड़ निकल जाती है तथा गांठों पर चमक आ जाती

शेष पृष्ठ सं० 33--पर

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ

नियति जैन
पी.एच.डी. छात्रा
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 देवी सिंह
सहायक अध्यापक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

कद्दूवर्गीय सब्जियॉ कुकुरबिटेसी कुल के अन्तर्गत आती है। सब्जियों में कद्दूवर्गीय सब्जियॉ अपना विशेष स्थान रखती हैं। इनकी उपलब्धता वर्ष में लगभग 8–10 महीने रहती है। आर्थिक दृष्टिकोण से इनकी महत्ता अधिक है। इनका उपयोग कच्चा सलाद (खीरा, ककड़ी) पकाकर सब्जी के रूप में (लौकी, टिन्डा, तरोई, करेला, काशीफल, परवल, कुंदरू, चिचिन्ढा, चपन कद्दू), मीठे फल के रूप में (तरबूज, खरबूज) मिठाई बनाने में (पेंठा, परवल, लौकी) अचार बनाने में करेला, आदि रूप में किया जाता हैं। इन सब्जियों की खेती में कुछ बातें सामान्य है जो नीचे दी गयी है।

जलवायु :– मुख्य रूप से कद्दूवर्गीय सब्जियॉ गर्म जलवायु की फसलें हैं। इनमें ज्यादा ठंड और पाला सहन करने की क्षमता नही होती है। इसकी खेती के लिये सर्वाधिक तापमान 40 डिग्री सेल्सियस और न्यूनतम 20 डिग्री से0 है। आदर्श तापक्रम 25 से 30 डिग्री से0 है। तरबूज और खरबूज के लिये आदर्श तापमान 30 से 35 डिग्री से0 है।

भूमि और भूमि की तैयारी :– कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिये बलुई दोमट या दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती नदियों के किनारे भी की जाती है। मृदा का पीएच मान 6 से 7 अच्छा माना गया है। अच्छी तरह 3–4 जुताई करके खेत में नाली व थाले बना लेते हैं जिसमें बीज की बुआई करते हैं।

खाद एवं उर्वरक :– गोबर या कम्पोस्ट की सड़ी खाद 20 से 25 टन प्रति है0 की दर से, खेत में बीज बोने के 3 से 4 सप्ताह पहले भूमि तैयार करते समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं। इसके अलावा 50–100 किग्रा0 नाइट्रोजन, 30–60 किग्रा0 फास्फोरस और 30–60 किग्रा0 पोटाश प्रति है0 की दर से आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और एक तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा आपस में मिला कर बोने वाली नालियों के स्थान पर डाल कर मिट्टी में मिला दें और थालें बनायें। शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में बॉटकर बुआई के लगभग 25 से 30 दिन और पौधों की बढ़वार के समय (40 से 50 दिन बाद) फूल निकलने पर नालियों में टापड्रेसिंग करें और गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ायें।

अंतः शस्य कियायें :– जरूरत के अनुसार निकाई गुड़ाई करते रहते हैं। जब पौधों का पूर्ण विकास हो जाता है, तो खरपतवार का कुप्रभाव फसल के ऊपर नहीं पड़ता। व्यावसायिक स्तर पर खेती के लिये स्टाम्प 3.3 लि0 प्रति है0 की दर से 1000 ली0 पानी में घोलकर जमीन के ऊपर बुआई के 48 घन्टे के भीतर छिड़काव करें। नालियों या थाले की गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देते है।

सिंचाई :– बीज की बुआई, खेत में नमी की पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिये। जिससे बीजों का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी प्रकार हो। वर्षा कालीन फसल के लिये पानी की विशेष आवश्यकता नही पड़ती है। केवल आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई की जाती है। यदि आवश्यकता से ज्यादा बारिश हो, तो खेत से पानी निकाल देतें है। औसतन गर्मी की फसल को 4–7 दिन तथा जाड़े की फसल को 10–15 दिन पर पानी देना चाहिये। खरबूज और तरबूज की फसल में फलों की बढ़वार होने के बाद पानी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

पौधों को सहारा देना :– ग्रीष्मकालीन कद्दू वर्गीय

सब्जियों में साधारणतया सहारा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लेकिन वर्षा कालीन फसल में पौधों को किसी मचान या अन्य से सहारा देने पर उनकी बढ़वार और उपज पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

लौकी :– लौकी एक अत्यंत ही प्रचलित सब्जी है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती जायद एवं खरीफ दोनों ऋतुओं में की जाती है। इसकी उपलब्धता लगभग पूरे वर्ष रहती है। सब्जियों के अलावा कच्चे फलों से रायता, कोफ्ता, अचार, हलवा, खीर इत्यादि स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते है। यह कब्ज को दूर करने में अत्यंत लाभकारी है। बीज से प्राप्त तेल सरदर्द में राहत दिलाता है। इसका गूदा दवाओं के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें विटामिन के साथ–साथ कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

उन्नतशील किस्में :–

पूसा समर प्रोलिफिक लॉग :– इसके फल 40–50 सेमी0 लम्बे, हरे रंग के तथा अधिक उपज देने वाले होते है। यह किस्म गर्मी तथा बरसात दोनों ही मौसम के लिये उपयुक्त है। ग्रीष्म ऋतु में इसकी औसत उपज 125 कुन्तल तथा वर्षा ऋतु में 200 कुन्तल प्रति है0 होती है।

पूसा समर प्रोलिफिक राउण्डः– इसके फल गोलाकार एवं हरे रंग के होते हैं। इसे गर्मी और बरसात दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है, परंतु यह किस्म ग्रीष्म ऋतु के लिये बहुत उपयुक्त है। इसकी पैदावार प्रति है0 200–250 कु0 होती है।

पूसा नवीन :– यह उत्तर भारत में गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में उगायी जाने के लिये उपयुक्त है। इसके फल बेलनाकार, सीधे, 30–35 सेमी0, लम्बे एवं औसतन 800–850 ग्राम भार वाले होते है। इसकी औसत उपज 250–300 कुन्तल प्रति है0 होती है।

अर्का बहार :– इस किस्म के फल मध्यम आकार के हल्के हरे, मुलायम एवं चमकीले होते है। प्रत्येक फल का औसत भारत 1.00 किग्रा0 तक होता है। यह 120 दिन में तैयार हो जाती है और भण्डारण क्षमता भी अच्छी है। औसत उपज 250–300 कु0 प्रति है0 होती है। यह ग्रीष्म तथा दोनों मौसम में उगाने के लिये उपयुक्त है। यह निर्यात के लिये उत्तम मानी जाती है।

पंजाब राउण्ड :– इस किस्म के फल गोल, मुलायम, चपटे एवं चमकीले होते हैं। पके फलों का रंग ऊपर से हल्का हरा और गूदा सफेद होता है। औसत उपज 350 कु0 प्रति है0 होती है।

पंजाब लॉग :– इसके फल लम्बे, मुलायम एवं आकर्षक होते है। इसकी औसत उपज 250–300 कु0 प्रति है0 होती है।

पंजाब कोमल :– यह एक अगेती किस्म है, जो 70 दिनों में तोड़ने योग्य तैयार हो जाती है इसके फल मध्यम आकार के लम्बोत्तर, हल्के हरे तथा मुलायम होते है। प्रत्येक फल का औसत वजन 600 ग्राम होता है। एक लता पर 10–12 फल लगते है। इसकी औसत उपज 300 कु0 प्रति है0 होती है। यह खीरा मौजेक रोग के प्रति अवरोधी है।

उपरोक्त के अतिरिक्त पंत संकर लौकी–1, पंत संकर लौकी–2, आजाद नूतन, कल्यानपुर, लॉग ग्रीन अन्य अच्छी किस्में भी हैं।

बुआई का समय :– लौकी मुख्यतः दो मौसम में लगायी जाती है।

ग्रीष्मकालीन :– बीज की बुआई जनवरी से लेकर मार्च महीने तक करते हैं।

वर्षाकालीन :– इस ऋतु के लिये बीज की बुआई जून–जुलाई के महीने में करते है।

बीज की मात्रा :– एक हे0 खेत के लिये 4–5 किग्रा0 बीज पर्याप्त होता है।

बीज की बुआई :– ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिये कतार से कतार की दूरी 2–2:5 मी0 और पौध से पौध की दूरी 1 मीटर होनी चाहिये। वर्षा ऋतु की फसल के लिये कतार से कतार की दूरी 3 मी0 और पौध से पौध की दूरी 1.5 मी0 होनी चाहिये। ग्रीष्म में बीज लगाने के लिये कतार से कतार की दूरी पर 80 से 100 सेमी0 चौड़ी नालियॉ बना लेते है। नालियों के दोनों किनारों (मेड़ों) पर पौध से पौध के फासले पर एक स्थान पर 2 बीज की बुआई 2–3 सेमी0 की गहराई पर करें।

तुड़ाई :– बाजार में बेचने के लिये फल जब कोमल हो तभी तोड़ लेना चाहिये। पहचान के लिये जब लौकी की वृद्धि जातीय गुण के अनुरूप हो चुकी हो, फल में बीज न बने हों और गूदा काफी कसा हो, तोड़ने के लिये उत्तम अवस्था मानी जाती है। जब फल की त्वचा कड़ी हो जाये तब फल खाने योग्य नहीं रहता है। फल की

तुड़ाई 5–6 सेमी0 डण्ठल लगी अवस्था में किसी तेज चाकू से करनी चाहिये।

उपज :– लौकी की औसत उपज 250–300 कु0 प्रति है0 होती है।

चिकनी तोरी :– चिकनी तोरी या नेनुआ की खेती प्रायः गांवों में घर–घर होती है। जब फल मुलायम एवं कोमल हो तभी उपयोग में लाया जाता है। इसके सूखे हुये फल के स्पंजयुक्त भाग को स्नान करने के लिये, बर्तनों को साफ करने के लिये एवं कारखानों में उत्पादित पदार्थ को पैक करने के लिये प्रयोग में लाया जाता हैं। कहीं–कहीं पर इसके बीजों से तेल भी निकाला जाता है।

उन्नतशील किस्में :–

पूसा चिकनी :– यह अगेती प्रजाति हैं। जिसमें बुआई के 45 दिन बाद फल आना प्रारम्भ होते हैं। यह गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में आसानी से उगायी जा सकती है। इसके फल चिकने, गाढ़े हरे रंग के, बेलनाकार होते है। एक बेल पर 15 से 20 फल लगते है। इसकी औसत उपज 200 से 250 कु0 प्रति है0 है। अधिकतर चिकनी तोरी की स्थानीय किस्में बोने के काम में लाई जाती है। चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्यौगिक विश्वविद्यालय से विकसित कल्यानपुर हरी चिकनी किस्म भी अच्छी है।

बीज की मात्रा :– एक हे0 खेत की बुआई के लिये 5–6 किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है।

बीज बोने का समय :– चिकनी तोरी की बुआई प्रायः दो मौसमों में की जाती है। ग्रीष्मकालीन बुआई फरवरी–मार्च में तथा वर्षाकालीन बुआई जून–जुलाई में की जाती हैं।

बीज की बुआई :– इसकी बुआई के लिये 2.0–2.5 मी0 की दूरी पर 60–75 सेमी0 चौड़ा तथा 20 से 30 सेमी0 गहरी नालियां बनानी चाहियें। बनी हुई नालियों (मेड़ों) पर 50–60 सेमी0 की दूरी पर दोनों तरफ बीज की बुआई करते है। एक स्थान पर दो बीज 2.5 से 3.0 सेमी0 की गहराई पर लगाते हैं।

फलों की तुड़ाई :– फलों की तुड़ाई पर विशेष ध्यान देना चाहिये। फलों की तुड़ाई में थोड़ी सी भी देर होने पर फलों के गुणों में कमी आ जाती है और फसल का अच्छा मूल्य नहीं मिल पाता। फलों की छोटी एवं कोमल अवस्था में तुड़ाई करते रहने से फल लगने की प्रक्रिया काफी दिनों तक चलती रहती है। फलतः उपज व लाभ अधिक होता है।

उपज :– चिकनी तोरी की औसत उपज 150–200 प्रति कु0 प्रति है0 होती है।

आरा तोरी :– आरा तोरी भारतीय मूल का पौधा है। इसके कोमल व मुलायम कलियों और फलों को सब्जी के रूप में, सूखे हुये रेशे को बर्तन साफ करने तथा उद्योग में फिल्टर के रूप में प्रयोग किया जाता है। आरा तोरी की खेती प्रायः वर्ष भर की जाती है। जिन लोगों को कम ऊर्जा वाले भोज्य पदार्थ की संस्तुति की जाती है उनके लिये आरा तोरी ही एक सब्जी है, जो पूरक के रूप में उपयोग की जा सकती है। आरा तोरी के बीज में 18.3 से 24.3 प्रतिशत तक तेल और 18.00 से 25.00 प्रतिशत तक प्रोटीन होती है।

उन्नतशील किस्में :–

पूसा नसदार :– यह अगेती से मध्यम किस्म है जिसमें 60 दिन में फूल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। फल हल्का हरा और उस पर नसें उभरी होती है। गूदा पूरी तरह विकसित तथा सफेद से हरे रंग का होता है। यह प्रजाति गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं के लिये उपयुक्त है आरे इसके फल 15–20 सेमी0 लम्बे होते हैं। इसकी उपज 150–160 कु0 प्रति है0 होती है।

कोयम्बटूर–1 :– इसके प्रत्येक बेल पर 10–12 फल लगते है। औसतन एक फल का वजन 200 ग्राम होता है। फल मोटे, हल्के हरे व काफी आकर्षक होते हैं। इस प्रजाति की पहली तुड़ाई 55 दिन पर की जा सकती है तथा औसत उपज 140 से 150 कु0 प्रति है0 होती है। फसल की अवधि लगभग 125 दिन होती है।

कोयम्बटूर–2 :– इसके फल हल्के रंग के और छिलके पर हल्की नसें या उभार की कतार पायी जाती है। फल काफी लम्बे होते हैं। फल में बीज कम मात्रा में बनते हैं। फसल का जीवनकाल 110 दिन का होता है और 70 दिनों में पहली बार फल की तुड़ाई की जा सकती है। इस प्रजाति की औसत उपज 250–280 कु0 प्रति है0 है।

पी0के0एम0–1 :– यह किस्म गर्मी और वर्षा दोनों ऋतुओं में खेती के लिये उत्तम पायी गयी है। इस फसल का जीवनकाल 160 दिन का होता है। फल काफी गहरे रंग के और औसतन 300 ग्राम वजन के होते

है। इसकी उपज 280 से 300 कु0 प्रति है0 होती है।

पंजाब सदाबहार :– इस किस्म के पौधे मध्यम आकार के व गहरे रंग की पत्तियों वाले होते है। फल पतले, लम्बे, उभारदार, मुलायम, मुड़े हुए तथा प्रोटीन से भरपूर होते है। इसकी बुआई मई से जुलाई तक कर सकते है। इसकी औसत उपज 100–120 कु0 प्रति है0 होती है।

पन्त तारोई–1 :– इसके फल बुवाई के लगभग 65 दिन बाद मिलना प्रारम्भ कर देते हैं। औसत लम्बाई 19 सेमी0 एवं आकृति मुग्दलाकार होती है। ग्रीष्म तथा खरीफ दोनों फसलें की जा सकती हैं। औसत उपज 100–125 कुन्तल/हे0 होती है।

सतपुतिया :– यह बिहार की स्थानीय प्रजाति है। इसमें उभयलिंगी पुष्प लगते हैं। इसमें छोटे आकार के हल्के, लम्बे व अण्डाकार फल गुच्छों में लगते है। फलों पर धारियॉ नहीं पायी जाती है और स्वाद अच्छा होता है।

बोने का समय :– इसकी बुआई ग्रीष्म व वर्षा दोनों ऋतुओं में की जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल की बुआई फरवरी–मार्च व वर्षाकालीन फसल की बुआई जून–जुलाई में करते हैं।

बीज की मात्रा :– एक है0 खेत की बुआई के लिये 5.00 किग्रा0 बीज पर्याप्त होता है।

बीज की बुआई :– नाली से नाली या कतार से कतार की दूरी 2.0–2.50 मी0 पर 50 से 60 सेमी0 चौड़ी नाली बना लेते हैं। पौध से पौध या थाले से थाले की दूरी 50–60 सेमी0 रखनी चाहिये। नालियों के दोनों किनारों(मेड़ों) पर बुआई की जाती है।

फलों की तुड़ाई :– फलों की छोटी व मुलायम अवस्था में ही तुड़ाई करनी चाहिये। क्योंकि फल कड़ा हो जाने पर गुणों में कमी आ जाती है। सामान्यतः 60 दिनों बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते है। फसल के पूरे जीवनकाल में लगभग 8 बार तुड़ाई की जा सकती है। फलों की तुड़ाई एक सप्ताह के अंतराल पर करनी चाहिये।

उपज :– आरा तोरी की उपज औसतन 100–150 कु0 प्रति है0 प्राप्त होती है।

करेला :– करेला अपने विशेष औषधीय गुणों के कारण अन्य सब्जियों की अपेक्षा अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी खेती भारत वर्ष में खरीफ और जायद दानों ऋतुओं में की जाती है। इसके फल सब्जी, कलौंजी व अचार बनाने के काम में आते है। इसके फलों को काट कर सुखा लेते हैं और बाद में सब्जी के रूप में भी प्रयोग करते हैं। इसके फल का प्रयोग पेट की बीमारी से ग्रसित रोगियों के लिये लाभदायक है। कच्चे फल का रस निकालकर जले हुये घाव इत्यादि पर प्रयोग करने से शीतलता प्राप्त होती है। चेचक की बीमारी में भी हल्के नमक के साथ प्रयोग करने से राहत मिलती है।

करेले के कच्चे फलों का रस मधुमेह (डायबिटीज) रोगियों के लिये भी बहुत उपयोगी है और उच्च रक्तचाप के मरीजों में बहुत लाभदायक होता है। इसमें उपस्थित कडुवाहट (मोमोर्डसिन) मनुष्य के खून कों साफ करने में काफी मदद करती है। इसके पौधे से तैयार पाउडर का प्रयोग घमौरी एवं फोड़े फुन्सियों को ठीक करने में होता है।

उन्नतशील किस्में :–

पूसा दो मौसमी :– नाम के अनुसार यह किस्म दोनों मौसम(खरीफ व जायद) में बोयी जाती है। फल बुआई के लगभग 55 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाते है। फल हरे, मध्यम मोटे तथा 18 सेमी0 लम्बे होते है।

पूसा विशेष :– इसके फल हरे, पतले, मध्यम आकार के तथा खाने में स्वादिष्ट होते है। औसतन एक फल का वजन 115 ग्राम होता है। इसकी उपज 120–130 कु0 प्रति है0 होती है।

अर्का हरित :– इस प्रजाति के फल चमकीले, हरे, आकर्षक, चिकने, अधिक गूदेदार तथा मोटे छिलके वाले होते है। बुआई के बाद 120 दिन में तैयार हो जाते है। फल में बीज कम तथा कडुवाहट भी कम होती है। इसकी उपज 130 कु0 प्रति है0 होती है।

प्रिया :– इसके फल 40 सेमी0 तक लम्बे होते है जो बुआई के 60 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाते है।

कल्यानपुर बारह मासी :– इस किस्म के फल काफी लम्बे तथा हल्के रंग के होते है। यह किस्म खरीफ ऋतु के लिये उत्तम मानी जाती है।

फैजाबादी :– यह एक स्थानीय किस्म है। इसके फल लम्बे, मध्यम आकार केतथा गहरे रंग के होते है। यह अधिक उपज देने वाली किस्म है। इनके अतिरिक्त पन्त

शेष पृष्ठ सं० 35--पर

व्यवसाय के लिए मधुमक्खी पालन

अजय कुमार
सह प्रशिक्षक (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र
शियाट्स, इलाहाबाद

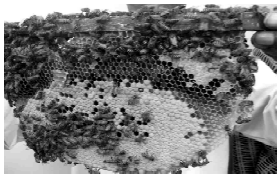

डा0 एस0 डी0 मेकार्टी
प्रोग्राम समन्वयक
कृषि विज्ञान केन्द्र
शियाट्स, इलाहाबाद

मधुमक्खी पालन एक अच्छा व्यवसाय है तथा किसानों के मित्र कीट है। पूरे भारत वर्ष में इसका पालन व्यवसाय के रूप में किया जा रहा है इससे मधु (शहद) एवं मोम प्राप्त होता है इसके अलावा मधुमक्खी फूलों में निषेचन क्रिया करके उनमें अच्छे फलों को जन्म देती है, जिससे उसमें वसा और प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है तथा फसलों में परपरागण के द्वारा उत्पादकता को बढा देती है। मधुमक्खी पालन शुरू करने से पहले मौन पालकों को जिन प्रमुख बातों की जानकारी होनी चाहिये उनमें प्रमुख हैं– मधुमक्खियों के प्रकार और इनमें से कौन सी आर्थिक रूप से अच्छी रहेगी। मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन, कृत्रिम भोजन पूरे वर्ष पुष्परस (मकरंद) एवं पराग युक्त लोरा उनके प्रमुख शत्रु एवं बचाव मौनपेटी इत्यादि।

मधुमक्खी जिसे मौन भी कहते है कई प्रकार की होती है।

1. **बड़ी मौन (एपिस डारसेटा)** :– जिसे सारंग के नाम से जानते है। बड़ी गुस्सैल स्वभाव की होती है। जिस कारण इसे नहीं पाला जाता है। यह खुले ऊँचे वृक्षों, पुराने ऊँचे भवनों, पानी की टंकियों तथा चट्टानों पर बड़ा सा एक छत्ता बनाती है और सबसे अधिक शहद एकत्रित करती है, किन्तु स्वभाव के कारण यह पालने के योग्य नहीं है।
2. **छोटी मौन (एपिस फलोरस)** :– इसे भुंगा या पतिंगा भी कहते हैं। यह मक्खी भी खुले में झाड़ियों अथवा सूखी टहनियों में छत्ते बनाती है। इससे प्रति मौनवंश से एक से डेढ़ किलो शहद ही एक वर्ष में प्राप्त होता है। इस कारण नहीं पाली जाती है।
3. **मध्यम सामान्य भारतीय मधुमक्खी (एपिस इण्डिका)** :– इस मधुमक्खी को खैरा व सतकुचवा नामों से भी जाना जाता है। इसे भारत में सभी जगहों पर पाला जा सकता है। लेकिन व्यवसायिक स्तर पर मौन पालन में यह उपयुर्क्त नहीं है। क्योंकि इसमें शहद वर्ष में 10 से 15 किलो शहद प्राप्त होता है। दूसरा इस में घर छूट की आदत होती है।
4. **विदेशी या इटेलियन मौन (एपिस मेलिफेरा)**:– यह मधुमक्खी यूरोपियन मधुमक्खी के नाम से जानी जाती है तथा भारतीय मधुमक्खी की बड़ी बहन है। यह आदत स्वभाव में भारतीय मौन से काफी मिलती जुलती है। आकार में कुछ बड़ी होती है। जिसमें शहद उत्पादन क्षमता भी अधिक होती है। इसमें एक वर्ष में प्रति मौन वंश 40–50 किलो से लेकर 150 किलो तक शहद प्राप्ति की सूचना है।

मधुमक्खी का सामाजिक संगठन (मौन समुदाय):– यह एक सामाजिक कीट है। जिसके परिवार में तीन प्रकार की मधुमक्खियां होती है।

रानी मक्खी
कमेरी मधुमक्खी या श्रमिक मौन
नर मधुमक्खियां या निखट्टू ड्रोन

रानी मक्खी :– मधुमक्खी परिवार में रानी मक्खी सदस्यों की मां होती है इसकी संख्या एक होती है यह कमेरी और नर मधुमक्खी की अपेक्षा बड़ी होती है। इसका रंग सुनहरा होता है, जो गर्भवती होने पर चमकीला काला हो जाता है। रानी की कुल आयु 2 से 3 वर्ष तक ही होती है। इसका कार्य अण्डे देकर वंश को बढ़ाना है। अपने जीवन काल में एक बार नर या ड्रोन के साथ संभोग करती है। उसके 50 से 72 घण्टे बाद अण्डा देना प्रारम्भ कर देती है। प्रतिदिन 1500 से 2000 अण्डे देती है, जो उम्र के साथ साथ घटती जाती है। फूल न होने की अवस्था में भी अण्डे नहीं देती है। रानी इच्छानुसार

संसेचित और असंसेचित दो प्रकार के अण्डे देती है। संसेचित अण्डों से कमेरी तथा असंसेचित अण्डों से नर मधुमक्खी पैदा होती है।

कमेरी या श्रमिक मौन :– कमेरी मौन अविकसित मादायें है, जो अण्डें देने योग्य नहीं होती है। इनके पिछले पैरों में पराग एकत्र करने की टोकरी होती है तथा उदर की निचली सतह पर मोम ग्रन्थियां होती है। जिनसें मोम निकाल कर ये छत्ते बनाती है। इनके सिर में कुछ फैरिन्जियल ग्रन्थियां होती है। जिससे निकले हुए द्रव्य को मधु में मिला कर ये रॉयल जेली बनाती है, जो कि रानी मधुमक्खी का भोजन होता है। इसके अलावा इनका कार्य शहद एकत्रित करना, अण्डे एवं बच्चों की देखभाल करना है। अधिक ठण्ड में छत्तों की रक्षा करना, छत्तों को साफ रखना इत्यादि है।

नर मधुमक्खी (ड्रोन मौन) :– ये मधुमक्खियां रानी मधुमक्खियों से जो असंसेचित अण्डे होते है पैदा होते हैं। ये रानी मधुमक्खी से छोटे एवं श्रमिक मधुमक्खी से आकार में बड़े होते है। ये स्वयं भोजन एकत्रित नहीं करते वरन श्रमिक मधुमक्खियों के द्वारा एकत्रित किये गये भोजन खाते है। समूह में इनका कार्य केवल रानी मधुमक्खी के साथ मैथुन करना होता है। एक अच्छे छत्ते में इनकी संख्या 150 से 600 तक होती है। भोजन की कमी के समय मानसून एवं सर्दियों में ये मधुमक्खियां श्रमिक मधुमक्खियों के द्वारा छत्ते से बाहर निकाल दिये जाते हैं और मार डाले जाते है। नर मधुमक्खी का जीवन चक्र लगभग 57 दिन का होता है। इनमें मैथुन क्रिया मादा मधुमक्खी (रानी) की उड़ान के समय खुले आकाश मे होती हैं। नर मधुमक्खी मैथुन के समय या उसके फौरन बाद जब उसका उदर जननांगों के सक्रियता के कारण फटता है, तो वह मर जाते है।

भोजन :– मधुमक्खी पालन करने में जगह का निरीक्षण करना कहां से किस प्रकार का भोजन प्राप्त हो सकता है तथा विभिन्न महीनों में उपलब्ध पौधें जिनसे भोजन मिल सकता है– लाही, सरसों, तोरिया, शीशम, यूकेलिप्टस, सहजन, मटर, लीची, नीम, बरसीम, इमली, जामुन, बेर, नींबू आदि पौधे इसके अलावा सब्जियों तथा कुछ मौसमी फूल से मकरन्द एवं पराग पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

कृत्रिम भोजन (एडवांस फीडर) :– कृत्रिम भोजन देने की आवश्यकता तब होती है, जब प्राकृतिक भोजन उपलब्ध नहीं होता है। इसके लिये चीनी का घोल पानी के साथ 400 ग्राम चीनी 600 मिली ली. पानी को गरम कर लेना चाहिये ताकि कोई भी कीड़े हो तो मर जायें ठण्डा करके घोल को फीडर में डाल देते हैं। मई से जुलाई तक 4 : 6 के अनुपात में चीनी एवं पानी का घोल, जुलाई सितम्बर तक 5 : 5 के अनुपात में तथा अक्टूबर से नवम्बर में 6 : 4 के अनुपात में चीनी और पानी का घोल मिलाकर देना चाहिये।

शहद उत्पादन का समय :– शहद उत्पादन का उचित समय शीतकाल एंव बसन्त ऋतु है। उस समय प्राकृतिक भोजन अधिकता से उपलब्ध रहता है।

मधुमक्खी के शत्रु :– मधुमक्खी के शत्रु बर्रे, मोमी कीडा मृत्यु सिरा पतंगा, चीटियाँ, दीमक, डाकू मक्खी, छिपकली, गिरगिटान इत्यादि है।

पृष्ठ सं० 08--का शेष

लिये पंखों का उपयोग पशुशाला के अन्दर पर्याप्त संख्या में तथा बाहर खुले स्थान पर छायादार वृक्ष लगाना चाहिये। भैसों को सुबह शाम नहलाना या 3 से 5 घण्टे तालाब के पानी में बैठाना या 4–4 घण्टे बाद नहलाना लाभप्रद होता है। प्रचुर मात्रा में हरा चारा, पीने का पानी व विटामीन–सी देने से पशुओं की गर्मी सहने की क्षमता बढ़ती है। आम की गुठली का चुरा खिलाने से भी गर्मी सहने की क्षमता बढ़ती है।

संक्रमण बीमारियों जैसे– खुरपका, मुंहपका, गलाघोटूं, एन्थरैक्स का टीका समय से लगवायें। जिससे बीमारियों का बचाव हो सकें, बीमारियों के कारण दूध उत्पादन बहुत कम हो जाता है। बीमार पशुओं का स्वास्थ पशुओं से अलग रखना चाहिये। मादा पशु गाय, भैंस के गर्म होने पर उसकी सावधानी से पहचान कर समय रहते कृत्रिम या प्राकृतिक विधि द्वारा अच्छी नस्ल के द्वारा ग्याभिन करायें। जिससे आने वाली पीढ़ी में और अधिक दूध उत्पादन की क्षमता बढ़ें। प्रजनन के लिये श्रेष्ठ सांड के वीर्य का ही प्रयोग करें। जिससे कोई बीमारी न हो।

गृह विज्ञान और कैरियर

नलिनी चन्द्रा
शोध छात्रा
इथिलिण्ड स्कूल ऑफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

नीति निशान्त
शोध छात्रा
एल0आई0सी0, डी0यू0

डॉ0 रजिया परवेज
एसोसिएट प्रोफेसर
इथिलिण्ड स्कूल ऑफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

यह विज्ञान भी है और कला भी। इसमें कई विद्याओं का समागम है, जैसे रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव विज्ञान, स्वच्छता, अर्थशास्त्र, बाल विकास, समाज शास्त्र, पारिवारिक संबंध, सामुदायिक जीवन, कला, भोजन, पोषण, पहनावा, वस्त्र, गृह प्रबंधन इत्यादि। समय, ऊर्जा, धन–राशि, स्थान एवं श्रम के संरक्षण के लिए श्रेष्ठ उपयोगिता के लिए उपलब्ध संसाधनों का श्रेष्ठ उपयोग गृह–प्रबंधन है। घर निर्माता को परिवार के सदस्यों के लिए उपलब्ध संसाधनों का श्रेष्ठ संभव खाद्य, पहनावा, आश्रय स्थल, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन उपलब्ध कराने की योजना विवेकपूर्ण ढंग से बनानी चाहिए। आधुनिक गृह विज्ञान हाऊस कीपिंग के तमाम खास पहलुओं का मिला जुला रूप है। गृह विज्ञान का कैरियर आज की प्रगतिशील व आधुनिक ख्यालों वाली महिला के लिए आदर्या कैरियर है। कोई भी गृह विज्ञान के पांच अंगों खाद्य एवं पोषण, संसाधन प्रबंधन, मानव विकास, वस्त्र विज्ञान और संचार में से किसी में भी विशेषज्ञता हासिल कर सकता है या सबकी सामान्य समझ हासिल कर सकता है।

खाद्य एवं पोषण में विशेषज्ञता हासिल करने वाले को खाद्य पदार्थो के पोषक तत्वों, खाद्य अपमिश्रण, आहार परामर्श, खाद्य संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण, स्वास्थ्य के प्रति सामुदायिक जागरूकता इत्यादि की विस्तृत जानकारी मिलती है। संसाधन प्रबंधन में प्रबंधन सिद्धांत व व्यवहार, ऊर्जा संसाधन प्रबंधन, उपभोक्ता जागरूकता, आवासीय व वाणिज्यिक भवनों की योजना व परिकल्पना इत्यादि की बारीकियों का पता चलता है। वहीं मानव विकास के बारे में पढ़ाई करने से मानव विकास के क्रमिक चरणों का पता चलता है। वस्त्र विज्ञान कपड़ों के बारे में समझ पैदा करता है, जिसमें टेक्सटाइल डिजाइनिंग से लेकर मक्रेन्डाइजिंग तक की समझ विकसित होती है।

कैरियर के अवसर :– जिन्होंने गृह विज्ञान से पढ़ाई की है, उन्हें प्रोडक्शन, पर्यटन, सेवा क्षेत्र, अध्यापन, तकनीकी या सेल्स में अवसर मिल सकते है। स्वरोजगार भी एक विकल्प है। इनके अलावा गैर सरकारी संगठनों में भी अवसर मिलते है।

प्रोडक्शन इंडस्ट्री :– इसमें शामिल है खाद्य संरक्षण, ड्रेस मेकिंग, स्पेशलाइज्ड कुकिंग, टेक्सटाइल डिजाइनिंग, फैशन डिजाइनिंग। इनके अलावा फूड इंडस्ट्री में या होटल में भी काम मिल सकता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग या खाद्य संरक्षण विभागों में बतौर फूड एनालिस्ट, क्वालिटी कंट्रोलर, क्वालिटी मैनेजर की नौकरी मिल सकती है।

कन्फेक्शनरी एवं बेकरी :– गृह विज्ञान स्नातक/स्नातकोत्तर व्यक्ति कन्फेक्शनरी, आइसक्रीम पार्लर तथा बेकरी चला सकते है। वे अपने निजी ऐसे उत्पादों को विकसित करने के लए अभिनव कौशल का प्रयोग कर सकते है, जो अधिक पोषक हों और पुराने उत्पादों से भिन्न हो तथा जो पार्टियों या डाइनिंग टेबल पर विविधता को बढ़ा सकें।

परिरक्षण :– आचार, जैम, मुरब्बे आदि के रूप में सब्जियों एवं फलों के परिरक्षण का कार्य चलाया जा सकता है। इन परिलक्षित सामग्रियों को बाजार से खरीदने की आवश्यकता, परम्परागत रूप से घर पर कार्य करने में व्यस्त महिलाओं के पास समय होने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए निश्चित रूप से बढ़ जाती है।

पकाने/परोसने के लिए तैयार खाद्य :– सब्जियों को साफ करने/छिलका उतारने की लघु इकाइयां स्थापित की जा सकती है ताकि गृहणियां द्वारा इन्हें पकाने के लिए तैयार किया जा सके। स्वस्थ्य रहन सहन को बढ़ावा देने के लिए फास्ट फूड के साथ–साथ

सलादबार स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार के सलाद तैयार किए जा सकते है।

संसाधन प्रबंधन :– संसाधन प्रबंधन में घरों के किफायती तथा प्रभावी रूप में प्रबंधन के अध्ययन का कार्य किया जाता है। घर में आवास डिजाइन, फर्निशिंग के बारे में मूल तथ्य निहित होते है, जो रूपयों और श्रम बचाने के साथ साथ अधिकांश कार्य न्यूनतम उपकरणों से करने की पद्धति सिखाएंगे।

आंतरिक सज्जा :– ये आंतरिक सज्जा की कला में प्रशिक्षण दे सकते है। ऐसे केन्द्र कार्यालयों, अस्पतालों स्कूल जैसी विभिन्न संस्थापनाओं की सज्जा सेवाएं भी प्रदान कर सकते है।

हॉबी सेंटर :– ऐसे हॉबी सेंटर चलाए जा सकते है जहां इच्छुक व्यक्ति मोमबत्ती, कागज के फूल बनाने, सजावटी वस्तुएं बनाने, खिलौने, रंगोली, आभूषण डिजाइनिंग, बर्तन बनाने, वाल पेटिंग तथा घरेलू बेकार सामग्रियों से उपयोगी वस्तुएं बनाना सीख सकते है।

प्रशिक्षण केन्द्र :– विभिन्न क्षेत्रों तथा महाद्वीपों की विभिन्न पाक कला सीखने के इच्छुक व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने के लिए हॉबी सेंटर चलाए जा सकते है। स्नातक/स्नातकोत्तर अस्पतालों, नर्सिंग होम तथा फिटनेस सेंटर में आहारविद् के रूप में कार्य की खोज कर सकते है अन्यथा राष्ट्रीय/अंतराष्ट्रीय एजेंसियों में आहार विशेषज्ञ तथा आहार परामर्शदाता बन सकते है।

चाहल्ड केयर/डे केयर सेंटर तथा मोबाइल क्रेच :– घर से बाहर आय सर्जक कार्यो में लगी महिलाओं को परिवार से बाहर शिशु देख रेख की आवश्यकता होती है। जिन बच्चों को 12 वर्ष की आयु का होने तक व्यस्कों द्वारा देख रेख किए जाने की आवश्यकता होती है और जिन्हें घर पर अकेले नहीं छोड़ा जा सकता, उनके लिए गृह विज्ञान स्नातक डे केयर सेंटर, क्रेच, नर्सरी स्कूल एवं आफ्टर स्कूल सेंटर जैसी चाइल्डहुड केयर यूनिट चला सकते है।

कपड़ा एवं परिधान डिजाइनिंग :– गृह विज्ञान का यह क्षेत्र पहनावे के चयन, निर्माण तथा देख रेख पारिवारिक आय, व्यवहार तथा विभिन्न वस्त्रों की रासायनिक प्रकृति, बुनाई के प्रकार, क्वालिटी, रंग, कपड़ों के सिकुड़ने तथा टिकाऊपन, प्राकृतिक रेशों जैसे रेशम, ऊनी, सूती धागों की क्वालिटी, सिथेंटिक कपड़ों जैसे नायलोन, रेयोन, टेरी कोट आदि के प्रकार पर प्रकाश डालता है।

पर्यटन व सेवा क्षेत्र :– होटल व हॉस्पिटेलिटी मैनेजमेंट सर्विसेज में अवसर है। अस्पतालों, प्रसूति गृहों, स्निमिंग सेंटर्स या बोर्डिंग स्कूलों में रोजगार के अवसर खुले है। सर्विस इंडस्ट्री में गृह विज्ञान स्नातकों की भारी मांग है।

शोध एवं अध्यापन :– फूड साइंटिस्ट, रिसर्च एसोसिएट्स, अध्यापक व व्याख्याता के रूप में भी कैरियर विकल्प मौजूद है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों व कॉलेजों में अध्यापन का काम किया जा सकता है।

सेल्स एवं टेक्निकल :– खाद्य उत्पादों, बेबी फूड्स, गारमेंटस की सेल्स लाइन में भी काम मिल सकता है। इसके अलावा फूड एनालिस्ट, फूड साइंटिस्ट, डेमोंस्ट्रेटर्स के रूप में भी अवसरों की कमी नहीं है।

पृष्ठ सं० 09--का शेष

में आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करनी चाहिए। पुष्पन व फलन के समय खेत में उचित नमी जरूरी है। वर्षाकालीन मौसम में जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है। पानी के खेत में रुकने से फूल झड़ने लगते हैं तथा विकसित हो रहे फल पीले होकर गिर जाते हैं।

तुड़ाई, उपज एवं भण्डारण :– लताओं की वृद्धि के साथ–साथ उन पर फूल आने लगते हैं। लेकिन इन पर लगने वाले प्रारम्भिक फलों को तोड़ देना चाहिए नहीं, तो अगले फल लगने में काफी देर हो जाती है। दूसरी बार लगने वाले फलों को बढ़ने दिया जाता है और कोमल अवस्था में ही तोड़ लिया जाता है। फलों की तुड़ाई करने के लिए फलों के डंठल को किसी धारदार तेज चाकू से काटना चाहिए, जिससे पौधों को नुकसान न हो। सामान्यतः बुवाई के 45–50 दिन बाद फलों की तुड़ाई शुरु कर देनी चाहिए। टिण्डा की अच्छी फसल से औसतन 150–200 कुंतल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। आवश्यकतानुसार फलों को किसी छायादार स्थान पर 2–3 दिन तक किसी टोकरी में रखकर भंडारित कर सकते हैं। इस दौरान फलों पर बीच–बीच में पानी का छिड़काव करना जरूरी होता है। 4–6 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले प्रशीतन गृहों में टिण्डे को 15 दिनों तक सुरक्षित अवस्था में भंडारित किया जा सकता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकारक जैव उर्वरकों का कृषि में महत्व एवं उपयोग

डॉ0 राम भरोसे
सहायक प्राध्यापक
मृदा एवं पर्यावरण विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

देश के आजाद होने के दो दशक तक भारत में अनाज की बहुत ही कमी रही। इसके बाद से भारत ने कृषि क्षेत्र में कठिन प्रयास करके अपने आप को सक्षम बनाया है और धीरे – धीरे 1960 में उच्च उपज वाली किस्मों (High Yielding Varities) के आने के बाद तथा सघन शस्य पद्धतियों के अपनाने एवं बढ़े उर्वरकों के उपयोग से कृषि उत्पादन में लगातार वृद्धि होती रही।

इसके बाद 1990 के दशक में कृषि उत्पादन में कमी को देखा गया। इसकी मुख्य वजह थी मृदा में उत्पादकता के सभी कारकों में कमी आना। जो कृषि वैज्ञानिकों और योजना बनाने वालों की चूक की वजह से हुई अब इस कमी को दूर करने, भूमि की दशा सुधारने एवं उपजाऊ बनाने के लिए कृषि वैज्ञानिक मिश्रित पोषक तत्व प्रबन्धन को बढ़ावा दे रहे हैं।

जिसमें फसलों को पोषक तत्व देने के लिए तीन प्रमुख स्रोत हैं– अर्थात रासायनिक खाद, कम्पोस्ट एवं गोबर की खाद तथा जैविक खाद हैं। जैविक खाद का उपयोग कृषि उत्पादन बढ़ाने तथा भूमि की उपजाऊ क्षमता बनाये रखने में विशेष महत्व रखता है। जो तत्वीय नाइट्रोजन की अनुपलब्धता को उपलब्ध बनाते हैं, सड़े–गले पौधों के अवशेषों को पौधों को तत्व रूप में उपलब्ध कराना, ताकि उन्हें पौधे शोषित कर सकें, आदि कार्य शामिल हैं।

इनके मूल्य रासायनिक खादों की अपेक्षा कम होते हैं। साथ ही इनकी उपलब्धता कम्पोस्ट एवं गोबर की खाद की अपेक्षा आसानी से एवं अधिक होती है। जिसके कारण किसानों को आसानी से मिल जाते हैं। अतः इक्कीसवीं सदी में जैव–उर्वरकों के प्रयोग द्वारा ही उत्पादन को आगे बढ़ा सकेंगे।

जैव उर्वरक के अन्तर्गत राईजोबियम इनॉकुलेंट (Rhizobium Inoculant) मुख्य है, जिसे विभिन्न दलहनी फसलों में प्रयोग किया जाता है इसके अलावा नीली हरित शैवाल (Blue -green algae) सायनो बैक्टीरिया (Cyanobacteria) जिसे यदि भूमि में प्रयोग किया जाय, मुख्य रूप से धान में तो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को संचित करती है। आज देश में अन्य जैव उर्वरक जैसे एजोटोबैक्टर (Azotobactor), एजोस्पिरिलम (Azospirillium) एवं एसीटोबैक्टर (Acetobactor) भी बनाए जा रहे हैं जो राष्ट्रीय जैव–उर्वरक विकास केन्द्र भारत सरकार गाजियाबाद, नेफेड इन्दौर, भरतपुर (KRIBHCO) तथा इफको (IFFCO) द्वारा तैयार किए जा रहे हैं, अनुमानित 80,000 टन, एक हैक्टेयर भूमि के ऊपर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन मौजूद है। जिसे आसानी से इन जैव उर्वरकों द्वारा ही संचित किया जा सकता है, लेकिन पौधे अथवा जन्तु सीधे इस स्वतन्त्र नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर सकते।

जैव उर्वरक को निम्नलिखित वर्गो में बांटा गया है।

1. सहजीवानाइट्रोजनस्थिरीकरण बैक्टीरिया (Symbiotic N- fixing bacteria): जिसमें राइजोबियम समूह आता है जो दलहनों में तथा परासपोनिया (Parasponia) वगैर दलहनीय फसलों में होते हैं इस विधि से संचित 10 किग्रा0 कार्बनिक नाइट्रोजन 100 किग्रा0 अमोनियम सल्फेट के बराबर होगी।

2. असहजीवानाइट्रोजनस्थिरीकरण बैक्टीरिया (Asymbiotic N- fixing bacteria): एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम Beijerinckia o Photo-synthetic N-fixing नीली हरित षैवाल प्रमुख हैं कुछ बैक्टीरिया ऐसे भी होते हैं जो पौधे की वृद्धि बढ़ाते हैं और पौधे की

बीमारियों से लड़ते भी हैं, यद्यपि उनके द्वारा संचित N कम है फिर भी इस तरीके से स्थिर 10 किग्रा0 नाइट्रोजन 50 किग्रा0 अमोनियम सल्फेट के बराबर होगी, एजोटोबैक्टर का प्रयोग सरसों, आलू, गेहूँ, धान, कपास, गन्ना में किया जाता है, जबकि एजोस्पिरीलम का बाजरा में प्रयोग होता है।

d) राइजोबियम इनौकुलेंट (Rhizobium Innoculant): राइजोबियम दलहनी फसलों का जैव–उर्वरक है। यह दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियों में पाया जाता है। दलहनी फसलों की जड़ों पर 2 प्रकार की ग्रंथियॉ (Nodules) होती हैं–एक सक्रिय (Effective) व दूसरी निष्क्रिय (Ineffective)। सक्रिय ग्रंथियों की संख्या कम, आकार में बड़ी, मध्य भाग में गुलाबी रंग की होती हैं, जो सक्रिय नाइट्रोजन स्थिरीकरण का मुख्य हिस्सा होता है, वैसे क्लोवर में इन ग्रंथियों का व्यास 2–6 मि0मी0 तथा लूसर्न में 3–10 मि0मी0 होता है। लोबिया एवं सोयाबीन में भी 3–10 मि0मी0 पाया जाता है। निष्क्रिय ग्रंथियां आकार में छोटी, सफेद, संख्या में अधिक व पूरे जड़ तंत्र पर दूर–दूर फैली होती हैं।

यह जीवाणु जड़ ग्रन्थियों के त्वचिका (Coretex) में निवास करता है। और वहीं से वायुमण्डल में विद्यमान नाइट्रोजन का संस्थापन करके अपने शरीर के कोशारस (Cellsap) में एकत्रित करता है। इस प्रक्रिया के समय राजोबियम अपने कोशारस में उपस्थित नाइट्रोजिनेज (Nitrogenage) और हाइड्रोजिनेज (Hydrogenage) एन्जाइम द्वारा नाइट्रोजन का अवकरण (Reduction) करता है। इस अवकरण के लिए आवश्यक ऊर्जा, दलहनी फसल द्वारा प्रदान की जाती है। दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियॉ में लेग्हीमोग्लोविन (Leg-hemoglobin) नामक लवक होता है। जो वायुमण्डल से ऑक्सीजन को शोषित कर इसे श्वसन क्रिया के लिए उपलब्ध कराता है। श्वसन क्रिया से ही नाइट्रोजन के अवकरण के लिए ऊर्जा प्राप्त होती है। अवकरण के पश्चात नाइट्रोजन, कार्बनिक पदार्थ (प्रोटीन) तथा एमीनोएसिड के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रोटीन को न केवल सम्बन्धित दलहनी फसल उपयोग में लाती हैं, बल्कि इसके उपयोग के पश्चात इस प्रकार संग्रहित नाइट्रोजन की अवशिष्ट मात्रा बाद में बोई जाने वाली फसलों को भी उपलब्ध होती है। इन जीवाणुओं को अपनी वंश–वृद्धि (Reproduction) हेतु अधिक मात्रा में फास्फोरस की आवश्यकता पड़ती है, जिसको राइजोबियम दलहनी फसल से प्राप्त करता है। अतः जिस प्रकार दलहनी फसलें नाइट्रोजन को राइजोबियम के कोषारस से उपयोग करने में समर्थ होती हैं। उसी प्रकार राइजोबियम भी अपनी कार्बोहाइड्रेट व फास्फोरस की आवश्यकता की पूर्ति फसल से करने में सक्षम होता है। कारण स्वरूप इस प्रकार की जीवन–पद्धति को सहजीवा (Symbiosis) कहा जाता है।

राइजोबियम जीवाणुओं का एक विशेष व्यवहार होता है। जिसके कारण विभिन्न प्रकार की दलहनी फसलों के लिए अलग–अलग प्रजाति के जीवाणु आवश्यक होते हैं। इसके प्रयोग से लगभग 20–25 किग्रा0 वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का प्रति हेक्टेयर स्थिरीकरण होता है। इसके अलावा अन्य विकासवर्द्धक (Growth Hormone) कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध होते हैं। फसल तथा मृदा पर इनके प्रयोग से कोई अवशिष्ट कुप्रभाव नहीं पड़ता। ये पर्यावरण संरक्षण में अप्रत्यक्ष रूप से योगदान करते हैं। इनके प्रयोग से फसलोत्पादन में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

राइजोबिया दो प्रकार के होते हैं– एक, तीव्र बढ़ने एवं अम्ल पैदा करने वाले, जैसे राइजोबियम फैसियोलाई, राइजोबियम ट्राइफोलियाई, राइजोबियम लेग्यूमिनोसोरम एवं राइजोबियम मिलोलाटाई और दूसरे, मंद बढ़ने वाले जीवाणु जो क्षारीयता पैदा करते हैं। जैसे ब्रेडी राइजोबियम जापोनीकम, राइजोबियम, लूपिनी एवं लोबिया का मिश्रित समूह वाला राइजोबियम।

राइजोबियम का मूल रोम (root hair) में प्रवेश सम्बन्धी विचार अभी विवादास्पद है, एक परिपक्व जड़ ग्रंथी एक केन्द्रीय 'bacteroid zone' की बनी होती है, जो ग्रंथी कोर्टेक्स से घिरी होती है, यह क्षेत्र Host Cell के 'bacteroids' का बना होता है। जिसमें लाल कण के हीमोग्लोबिन (red / pink pigment haemoglobin) इकट्ठे हो जाते हैं ये Pigment gh 'लेग हीबोग्लोबिन' (Leg- haemoglobin) कहे जाते हैं, जिसमें 'Leg' का अर्थ होता है –दलहन जड़ ग्रंथि (Leguminous root nodule) में हीमोग्लोबिन की उपस्थिती, हीमोग्लोबिन वास्तव में Globulin पौधे द्वारा बनता है, जबकि बैक्टीरियम (Bacterium) द्वारा (haemmocity) बनता है Leg- hae-

moglobin केवल Infacted cells में उपस्थित रहता है और इसकी स्थिति Host cytoplasm में होती है। इस प्रकार Leg- haemoglobin व bacteroid का आपसी सीधा सम्बन्ध दलहन (Legumes) द्वारा नाइट्रोजन संचति करने में होता है।

सिम्बिओसिस व नाइट्रोजन स्थिरीकरण को प्रभावित करने वाले कारक : Factors Affecting Symbiosis and Nitrogen Fixation :-

ग्रंथियों का निर्माण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं नाइट्रोजन संचित मात्रा अनेक कारकों पर निर्भर करती है, जैसे–

- जीवांश पदार्थ– राइजोबिया की संख्या बढ़ाने में जीवांश पदार्थ (Organic matter) का महत्व है। दलहन में ग्रंथियॉ बढ़ाने के लिए गोबर की खाद (FYM) अपेक्षाकृत अच्छी रहती है, खलियों (नीम, महुआ, अल्सी) से भी भूमि में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ती है।
- पोषण कारक–P, K, Ca व Mg तत्वों के द्वारा Symbiosis की क्रिया प्रभावित होती है। कोबाल्ट व मोलिब्लेनम का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है Leg-haemoglobin Synthesis में Fe, Cobalt व Cu का सीधा सम्बन्ध है। यदि Zn को भूमि में जिंक सल्फेट से दिया जाए, तो मसूर, सोयाबीन में अच्छे परिणाम मिलते हैं। विशेषकर उत्तर प्रदेश के तरायी इलाके में।
- इनके अलावा Host genotype, Rhizobial strains की सक्रियता अन्य सूक्ष्म जीवों का, भूमि, तापक्रम, प्रकाश आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

राइजोबियम इनॉकुलेंट के प्रयोग की विधि :– बीजों पर कल्चर की परत चढ़ाते समय प्रति बीज के ऊपर राजोबियम कल्चर की लगभग 1000 जीवित कोशिकाएं (Viable cells) होना चाहिए। 10 प्रतिशत चीनी या गुड़ का घोल बनाना चाहिए, जिसे पहले गर्म पानी में घोलें, फिर घोले हुए पदार्थ को ठंडा होने दें, फिर इस घोल में कल्चर मिलाऐं, फिर दोनों को मिलाकर बीजों पर छिड़कें और लेही को बीजों पर हल्के हाथ से रगड़ें, फिर छाया में सूखी बोरी पर डालकर रख दें अथवा ढंक कर बर्तन में रख लें, तब प्रयोग करें, कल्चर मिलाने के बाद बीजों के ऊपर चूना की पतली परत अवश्य चढ़ा दी जाए, ताकि भूमि में अम्लीयता एवं उपयोग किए जाने वाले उर्वरकों के अम्लीय प्रभाव से बचा जा सके वैसे बीजों को पानी में डुबोकर रख लें फिर कल्चर लगाऐं, तो हानिकारक तत्व पानी में घुलकर बाहर निकल जायेगें।

बीजों पर यदि कल्चर प्रयोग के साथ–साथ फफूँदनाशी प्रयोग करना हो तब कल्चर की मात्रा दोगुनी करनी पड़ेगी, यदि कल्चर प्रयोग में लाया गया है, तो कीटनाशी अथवा फफूँदीनाशी का इस्तेमाल न करें, तो ज्यादा अच्छा होगा, यदि कीटनाशी, फफूँदनाशी व कल्चर तीनों ही प्रयोग करने हों तो क्रमशः Fungicide, Insectcide – Rhizobium ¼ FIR) अर्थात फफूँदनाशी, कीटनाशी तथा अंत में कल्चर रखें।

राइजोबियम कल्चर के प्रभाव :– कल्चर के प्रयोग से दलहनी फसलों की उपज में 2–65 प्रतिशत तक वृद्धि मिली है, जो चना में 15–22 प्रतिशत, मसूर में 5–17 प्रतिशत, अरहर में 16–19 प्रतिशत, लोबिया में 12–20 प्रतिशत, उर्द में 14–27 प्रतिशत उपज वृद्धि पायी गई है। इसके अलावा दलहनों के बाद फसल चक्र में गेहूँ की उपज में भी (खरीफ दलहन में कल्चर के प्रयोग के बाद) बढ़ोत्तरी मिली है, जो अरहर के बाद गेंहूँ में 20–24 प्रतिशत, उर्द के बाद 20–21 प्रतिशत, चने के बाद 25 प्रतिशत व मसूर के बाद 22–25 प्रतिशत वृद्धि देखी गयी है।

कीटनाशियों का राइजोबियम (Rhizobium) की क्रिया पर प्रभाव :– चने में लिन्डेन की मात्रा 1 ppm तक जड़ों की ग्रंथियों के निमाण पर कोई बुरा असर नहीं डालती है। जबकि मटर में फफूँदनाशी–डाइथेन M–45 और बावस्टीन / 0.25 प्रतिशत (WP) से जड़ों में ग्रथिंयॉ एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि देखी गई।

एजोटोबैक्टर इनॉकुलेंट (Azotobacter Inoculant) :- एजोटोबैक्टर नामक जैव–उर्वरक में एजोटोबैक्टर जीवाणु पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस जीवाणु के संवाहक के रूप में कोयले का चूरा प्रयोग में लाया जाता है। 20–30 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 2–3 दिन तक रखकर फिर इसका प्रयोग किया जाता है। एजोटोबैक्टर (Azote = N, bacter = bacteria) का पता सोवियत वैज्ञानिक बैजरीन्क ने 20 वीं शताब्दी के शुरू में लगाया था, एजोटोबैक्टर का वर्गीकरण Azotobacter chrococcum, A. beijerinckii and A. vinelandii तथा

Azomonas agilis में है। इस वर्ग के जीवाणु विविधपोषी होते हैं। यह भूमि एवं पौधों की जड़ों की सतह पर स्वतन्त्र रूप से रहते हुए ऑक्सीजन की उपस्थित में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनिया (NH_4^+) में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराते रहते हैं।

इनके बैक्टीरिया का आकार छड़ की आकृति में, अपेक्षाकृत बड़े लम्बे आकार में 2–7 μ X 1–2.5 μ होता है। एजोटोबैक्टर की खास बात यह है कि यह पिगमेंट (Pigment) पैदा करता है 25–30 ^{0}C तापक्रम इनकी वृद्धि के लिए उपयुक्त तापक्रम माना गया है। वृद्धि के लिए अधिक नमी चाहिए।

चूँकि ये वायवीय (Aerobic) बैक्टीरिया हैं। अतः ऑक्सीजन की उपलब्धता लगातार रहनी चाहिए। उदासीन से कुछ ऊपर समु (pH) उपयुक्त रहती है भूमि में अधिक लवण सांद्रता होने पर रेतीली भूमि में सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीतला घट जाती है।

यह जीवाणु पौधों की जड़ों से उत्सर्जित पदार्थ (शर्करा, अमीनो एसिड, कार्बनिक अम्ल एवं विटामिंस) को ऊर्जा के स्रोत के रूप में प्रयोग करते रहते हैं। इनका प्रयोग खाद्यान्न, तिलहन, नगदी फसलों, सब्जियों की फसलों तथा बागबानी फसलों में किया जा सकता है। इनके प्रयोग से मृदा में 25–30 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर उपलब्ध हो जाती है। पौधों की वृद्धि में सहायक ऑक्सिन, जिब्रेलिन, साइनोकोबलएमीन तथा निकोटेनिक अम्ल के सूक्ष्म मात्रा में प्राप्ति से बीजों का अंकुरण प्रतिशत बढ़ जाता है। इस प्रकार खेतों में इनके प्रयोग से 15 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हो जाती है।

एजोटोबैक्टर की प्रयोग विधि : एजोटोबैक्टर को तीन प्रकार से प्रयोग कर सकते है।

1. भूमि में, 50–60 किग्रा0 गोबर की खाद (FYM) प्रति हैक्टेयर में आवश्यक कल्चर के पैकेट, सरसों में एक, गेहूँ में 10–12, आलू में 20–25 मिलाकर अन्तिम जुताई पर भूमि में मिलाएं। यह आसान तरीका है।
2. बीजोपचार 1 पैकेट (200 ग्राम0) कल्चर 8–10 किग्रा0 बीज के लिए पर्याप्त रहता है, द्वारा।
3. धान, टमाटर, बेंगन, मिर्च, गोभी की पौध (Seedling) को कल्चर के घोल में 10–15 मिनट डुबोकर।

गेहूँ, धान, सब्जियों, जैसे– प्याज, बैंगन, टमाटर, पातगोभी और चुकंदर में एजोटोबैक्टर के अच्छे परिणाम मिले हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (IARI, New Delhi) पर मक्का, ज्वार, कपास आदि में 6.7–71. 7 प्रतिशत की वृद्धि एजोटोबैक्टर के प्रयोग से मिली है, यह सूरजमुखी में तेल, आलू में स्टार्च, मक्का में प्रोटीन, चुकंदर में शर्करा 7–8 प्रतिशत बढ़ाता है तथा भूमि में 25–30 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर संचित कर देते हैं, एजोटोबैक्टर कुछ प्रतिजैव पदार्थ (Antibiotics) छोड़ता है, जो कीटाणुओं की तरह कार्य करते हैं तथा Indole Acetic Acid, जिब्रेलिन व O_2 जैसे वृद्धिकारक पदार्थ भूमि में छोड़ता है।

एजोस्पिरिलम इनॉकुलेंट (Azospirillum Inoculant) :- एजोटोबैक्टर के समान ही एजोस्पाइरिलमभी उपरोक्त वर्ग की फसलों में प्रयोग किया जाता है, इसका प्रयोग तथा कार्यप्रणाली एजोटोबैक्टर के ही समान होती है। Beijerinck (1925) ने स्पिरिलम लिपोफेरम Spirillum lipoferum कोनाइट्रोजन स्थिरीकरण बैक्टीरिया Nitrogen Fixing Bacteria ही कहा था Azospirillum (French name Azote = Nitrogen) की स्पीशीज (A. amazonense, A. seropedical, spirillum lipoferum, A. brasilense) हैं एजोस्पिरिलम का प्रभाव ज्वार, बाजरा, कामुनी में देखा गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अंतर्गत हुए प्रयोगों से स्पष्ट है कि इस बैक्टीरिया के द्वारा बीज उपचार करने से 20 से 30 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की बचत की जा सकती है। यदि इसे जौ, ज्वार, बाजरा तथा सूर्यमुखी की फसलों में प्रयोग करें। Azotobacter, Beijerinckia, Derxia, Azospirillum ये सभी Free living Nitrogen Fixers हैं, जो Non symbiotic nitrogen fixation की मदद से Elimental Nitrogen को संचित करते हैं। इसमें बैक्टीरिया और Cynobacteria (Blue green algae) कार्य करते हैं। बाजरा में एजोरिस्परिलम ब्रैसीलेन्स के द्वारा बीजोपचार तथा VAM Vasicular arbuscular mycorrhizal fungi के Soil inoculation से उपज में वृद्धि मिली।

नील– हरित शैवाल इनॉकुलेंट (Blue Green Algae Innoculants) :- नील हरित शैवाल निम्न श्रेणी के पादप होते हैं, जिसे साइनोबैक्टीरिया भी कहा जाता है। यह एक कोशिकीय जीवाणु हैं, जो तन्तु के आकार

के होते हैं। इस जीवाणु को धान की फसल के लिए वाययुमण्डलीय नाइट्रोजन को भूमि में संस्थापित कराने के उद्देश्य से उपयोग में लाया जाता है। यह शैवाल प्रकाश संश्लेषण से उर्जा ग्रहण करके वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण करता है अर्थात यह एक स्वपोशी जीवाणु होता है।

शैवाल जब एक बार धान के खेत में हो गई, तो वह लगातार अपनी जैविक क्रियाएं (Biological activities) रखती है। धान की रोपाई के एक सप्ताह बाद खड़े पानी की दशा में शैवाल लगा दी जाती है और खेत में कुछ दिनों तक पानी भरा रहने देते हैं। चूँकि धान के खेत में पानी भरा रहता है, अतएव नील हरित शैवाल की वृद्धि एवं विकास के लिए अनुकूल स्थिति विद्यमान रहती है। नील हरित शैवाल द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण एक विशिष्ट कोशिका हेटेरोसिस्ट (Heterocyst) द्वारा किया जाता है।

खेतों में प्रयोग की जाने वाली शैवाल Algae की कुछ प्रमुख प्रजातियॉ – नास्टॉक (Nostoc), एनाबीना (Anabena), क्लोथ्रीक्स, ओलोसिरा (Aulosira), Tolypothrix, Scytonema और Plectonema आदि हैं। धान के खेत में (Submerged दशा में) नील हरित शैवाल के उपयोग से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा लगभग 20 से 40 किग्रा0 नाइट्रोजन का प्रति हैक्टेयर स्थिरीकरण होता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों तथा अन्य पौध वर्द्धक रसायनों जैसे– ऑक्सिन, जिब्रेलिन, पाइरीडोक्सीन आदि की सूक्ष्म मात्रा प्राप्त होती है। जिसमें फसल के उत्पादन में लगभग 20 प्रतिशत वृद्धि होती है। अम्लीय तथा क्षारीय मृदा का सुधार होता है।

एजोला Azolla :- अजोला ठण्डे पानी में उगने वाली एक फर्न है, जो प्रायः तालाबों और पानी भरे स्थानों पर तैरती हुई उगती है। जो प्रकृति में सभी जगह विद्यमान है। जिसकी पत्ती में ब्लूग्रीन एल्गी सिम्बोयांट Blue-green Algal symbionts (Anabaena azollae) होता है, जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण (N-fixation) करता है। इसकी वृद्धि इतनी तीव्र गति से होती है कि यह 20 से 30 दिनों में दुगुनी हो जाती है। इसका धान की फसल में जैव– उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जाता है। धान की खेती में यह कार्बनिक खाद का काम भी करता है।

अपनी तीव्र वृद्धि के कारण यह धान की फसल में नील हरित शैवाल की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुई है। अजोला की नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता अधिक होती है। यह शीघ्र ही कार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित हो जाती है तथा मृदा के भैतिक गुणों में सुधार करती है। इसकी वृद्धि के लिए मृदा तल पर 5–10 सेमी0 खड़ा स्थिर पानी, 20 से 30 डिग्री सेल्सियस तापक्रम, मृदा का समान्य पीएच मान एवं 4 से 8 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर फास्फोरस होना सर्वोत्तम माना जाता है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि भूमि में 12 टन अजोला प्रति हैक्टेयर डालने से 20–30 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त हो जाता है।

एजोला Azolla का प्रयोग धान में 2 ढंग से किया जाता है। एक–धान की खेती से पूर्व खेत में हरी खाद के रूप में भूमि में मिलाना, दूसरी–दोनों ही की फसलें (dual cropping) अर्थात् धान की खड़ी फसल में अजोला उगाना। चूँकि इसे हरी खाद के रूप में धान में सह–फसल पद्धति में ले सकते हैं। 10 टन अजोला प्रति हैक्टेयर धान की रोपाई से पूर्व भूमि में मिलाया जाता है। जिसे पहले कहीं पानी भरी जगह में नर्सरी में तैयार कर लेते हैं।

नर्सरी में गोबर की खाद, सुपर फॉस्फेट व फ्यूराडान मिलाया जाए, तभी अजोला फर्न अच्छी उपज (Bio mass) देगी। तब उसे निकालकर धान के खेत में मिलाएं, धान की लम्बी अवधि की किस्मों के लिए दोहरी फसल (dual cropping) (धान + अजोला) अच्छी रहती है। आज आवश्यकता है 'Dry Azolla' ड्राई अजोला तकनीक तथा उसके अच्छी किस्मों के विकास की, अजोला की अच्छी वृद्धि के लिए 30 किग्रा0 P_2O_5 प्रति हैक्टेयर सुपर फॉस्फेट से देना चाहिए। 5–15 टन ताजा अजोला प्रति हैक्टेयर डालने से धान की उपज में 13–33 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

धन यहोवा की आशीष ही से मिलता है, और वह उसके साथ दुःख नहीं मिलाता।

नीतिवचन 10:22

महुआ

पूनम कुमारी
शोध छात्रा
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

अलका गुप्ता
सहायक प्राध्यापिका
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

महुआ के पेड़ हमारे देश में सभी जगह पाये जाते है। परन्तु गुजरात में इसके वृक्ष बहुत पाये जाते है। इसका पेड़ इमली के पेड़ की तरह बहुत बड़ा होता है। इसके फल दो प्रकार के होते हैं, एक तो उसका फल महुआ होता है, और दूसरा बादाम की तरह होता है किन्तु उससे बड़ा होता है, उसको गुल्लू कहते हैं। महुआ खाने के काम में आता है और गुल्लू का तेल निकाला जाता है।

महुआ पेड़ से पककर जब गिरता है, तो उसका रंग सफेद होता है। उसे लोग बीनकर घर ले जाते है और धूप में सुखा देते है। सूख जाने पर उसका रंग लाल तथा कुछ श्याम मिश्रित लाल हो जाता है। यह बहुत गर्म होता है, इसलिए गॉव में लोग इसको सुखाकर रख लेते हैं और जाड़ों के दिनों में इसको कई प्रकार से खाने के काम में लाते हैं।

गुल्लू का तेल भी गॉव में बहुत काम में लाया जाता है। इसका छिलका बहुत पतला और सख्त होता है। इसके छिलके को लोग निकालकर कोमल गुल्लू को धूप में सुखा लेते हैं। उसके बाद सरसों और तिल के तेल की भाँति सूखे गुल्लूओं को कोल्हू में पेलकर उसका तेल तैयार करते हैं। यह तेल भी बहुत गर्म होता है। इसलिए गरीब लोग इसे जाड़े के दिनों में खाने के काम में लाते हैं। जाड़े के दिनों में ये तेल घी की तरह जम जाता है। इससे शराब भी बनाई जाती है। पहले लोग इसकी शराब अपने घरों में तैयार किया करते थे, परन्तु अब कुछ समय से इसके प्रतिकूल कानून बन जाने के कारण इसका शराब बनना बंद हो गया है।

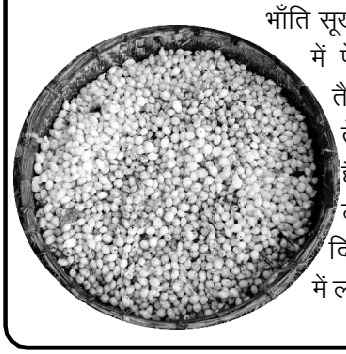

गुण :–

महुआ :– यह बहुत गर्म और स्निग्ध होता है। खाने में अत्यधिक मीठा होता है। मल को बाँधते हैं, बल को बढ़ाते हैं, धातु को उत्पन्न करते हैं। वायु और पित्त का नाश करते है। खॉसी, क्षय रोम में फायदा करता है।

गुल्लू का तेल :– इसकी प्रकृति उष्णा होती हैं। यह खाने में शक्तिवर्धक होता है। शुक को उत्पन्न करता है। शरीर की कान्ति बढ़ाता है। पुष्टकारक होता है। वायु–जनित रोगों को षान्त करता है। स्वाद में मधुर तथा कुछ कसैला होता है। कफ, पित्त–ज्वर का नाश करता है।

उपयोग :–

सॉप काटने पर :– महुए के बीज अर्थात गुल्लू को पानी में घिसकर कटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए। इससे विष की शान्ति होती है।

वायु के कारण दर्द पर :– शरीर में कहीं पर भी सर्दी–बादी के कारण पीड़ा होने पर, किसी गॉठ में दर्द होने पर गुल्लू का तेल से मालिश करने पर लाभ मिलता है। इसकी मालिश करके महुये के पत्ते गर्म करके ऊपर से बाँध देने से शीघ्र फायदा होता है।

सर्दी के प्रकोप पर :– जाड़े के दिनो में लोग सर्दी लगने पर इसे पकाकर खाते हैं, उससे लाभ मिलता है।

कैल्शियम साधन और उपयोगिता

स्नेहा वर्मा
शोध छात्रा
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस, शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 वरजीनिया पॉल
सह–प्राध्यापिका
खाद्य एवं पोषण विभाग
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस, शियाट्स, इलाहाबाद

माना गया है कि शरीर में अन्य खनिज लवणों की अपेक्षा कैल्शियम की मात्रा सबसे अधिक रहती है। शरीर में कुल जमा कैल्शियम का 99 प्रतिशत भाग अस्थियों एवं दॉतों में उपस्थित रहता है तथा शेष 1 प्रतिशत कैल्शियम अन्य कोमल तन्तुओं, रक्त के सीरम तथा अन्य तरल पदार्थो में पाया जाता है।

कैल्शियम प्राप्त करने के साधन :– दूध एवं दूध से बने पदार्थ जैसे दही, छाछ तथा पत्तेदार सब्जियॉ, फूल–गोभी, पत्ता गोभी, अण्डा, छोटी मछलियॉ (अस्थि सहित), सूखे मेवे, तिल, रागी, चौलाई के साग, सरसों के साग, सहजन की पत्तियॉं, दालें, तिल आदि भी कैल्शियम प्राप्ति के अच्छे साधन हैं।

कैल्शियम के प्रमुख कार्य हैं :–

(1) अस्थियों एवं दॉतों का निर्माण करना :– कैल्शियम अस्थियों एवं दॉतों के निर्माण के लिए आवश्यक होता है। अस्थियों की दृढ़ता एवं मजबूती के लिए कैल्शियम आवश्यक है। अस्थियों की रचना में कैल्शियम आवश्यक है।

(2) शारीरिक वृद्धि एवं विकास हेतु :– कैल्शियम की कमी के कारण शारीरिक वृद्धि एवं विकास बाधित हो जाता है।

(अ) रक्त जमने में सहायता करने हेतु :– कट जाने या दुर्घटना हो जाने पर शरीर में रक्त बाहर निकलने लगते हैं। अतः रक्त का जमना जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

रक्त का थक्का बनने में कैल्शियम के महत्व को इस प्रतिक्रिया द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है।

(ब) मॉंसपेशियों के संकुचन पर नियन्त्रण :– कैल्शियम मॉसपेशियों के फैलने एवं सिकुड़ने की क्रिया को नियंत्रण कर उन्हें क्रियाशील बनाए रखने में सहयोग देता है।

(स) हृदय की गति को सन्तुलित बनाए रखने हेतु :– कैल्शियम हृदय की गति के सन्तुलन के लिए आवश्यक है।

(द) एन्जाइम्स की क्रिया में सहायक :– छोटे आँत में अवशोषण क्रिया में सहायता करने हेतु।

कैल्शियम की कमी के प्रभाव :– कैल्शियम सभी उम्र के 4 व्यक्तियों के लिए आवश्यक है। जिसके कमी के कारण कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(1) शैशवावस्था में कैल्शियम की कमी के कारण शारीरिक वृद्धि घट जाती है। बच्चों में पैरों की अस्थियॉं सीधी न होकर थोड़ी टेढ़ी जा जाती है। जिसे धनुषाकार पैर (Bow legs) कहते हैं। अस्थियों का कमजोर एवं दुर्बल होना तथा उनमें प्रवृत्ति आना 'रिकेट्स' (Rickets) रोग कहलाता है। अतः कैल्शियम की कमी से बच्चों में रिकेट्स रोग हो जाता है।

(2) प्रौढ़ावस्था में (Adulthood) :– इस रोग में शरीर की अस्थियों में कैल्शियम का विसर्जन अधिक होने लगता है। यानी ''डीकैलसीफिकेशन'' (Decalcification) की क्रिया बढ़ जाती है।

(3) गर्भावस्था एवं स्तनदान अवस्था में :– गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली माताओं के आहार में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम का होना अनिवार्य है।

(4) वृद्धावस्था में :– वृद्धावस्था में कैल्शियम की कमी से ऑस्टोपोरोसिस नामक रोग हो जाता है।

अतः यह ज्ञात होता है कि कैल्शियम एक महत्वपूर्ण खनिज लवण है। जो कि प्राकृतिक खनिज पदार्थो में पाया जाता है, जो कि हमें रोजाना अपने आहार में शामिल करना चाहिए।

मत्स्य रोगों के सामान्य लक्षण

डा0 बिपाशा डेविड
सह प्रशिक्षक (मत्स्य पालन)
के0वी0के0, शियाट्स इला0

डा0 एस0डी0 मेकार्टी
कार्यक्रम समनव्यक
के0वी0के0, शियाट्स इला0

सफल मिश्रित मछली पालन के लिये मछली के रोग के लक्षण, कारण उपचार आदि की जानकारी आवश्यक है। अगर उचित समय पर रोगों की रोकथाम न की जाये, तो मछलियाँ मरने लगती है। इससे मत्स्य पालकों को भारी नुकसान का सामना करना पड़ सकता है।

मछलियों मे रोगों के लक्षण भिन्न –भिन्न होता है। स्वस्थ मछली चमकीली और साफ रंग वाली होती है एवं शरीर घाव रहित होता है। बीमार मछली में अनेक तरह के परिवर्तन देखें जा सकते है, जिनको निम्न तीन श्रेणियों में बांट सकते है।

(क) व्यवहारिक लक्षण –

1. मछलियों का पूरक आहार ग्रहण न करना।
2. मछलियों का तालाब के किनारों पर एवं सतह पर बार–बार आना।
3. पानी के प्रवेश द्वार पर आना एवं खरपतवार के नीचे रहना।
4. उल्टा सीधा चक्कर लगाना एवं सुस्त होकर धीरे–धीरे पानी में तैरना।
5. मछलियों का एक साथ एकत्र होना।
6. कुछ आवाज करने पर भी मछलियों का सतह पर ही रहना।

(ख) शारीरिक लक्षण – इस तरह के लक्षणों की जांच रोग ग्रस्त मछलियों के परीक्षण से प्राप्त होती हैं।

1. मछलियों के शरीर पर अत्यधिक लसलसा द्रव्य का निकलना।
2. शरीर का रंग का पीला पड़ जाना या बदरंग होना।
3. शरीर के ऊपर सफेद या काले रंग के दाग या चकत्ते दिखाई देना।
4. शरीर के ऊपर छोटे बड़े घाव या पंखों के नीचे हल्के हल्के लाल–लाल घाव दिखाई देना।
5. पेट का फूलना एवं शल्कों का निकलना अथवा शल्कों के बीच में द्रव्य जमा होना।
6. मछलियों के पंखों का टूटना अथवा सड़ना।
7. मछलियों की आंखों में सूजन आ जाना।
8. मछलियों का शरीर अत्यधिक पतला और सिर बड़ा दिखाई देना।
9. मछलियों के मुंह की थुथनी का बढ़ जाना।
10. गलफड़ों का टूटना एवं सड़ना, इनमें सफेद रंग की ग्रन्थि आकार के कोष्ठ का दिखाई देना।
11. गलफड़ों का रंग अत्यधिक गुलाबी दिखाई देना।
12. गलफड़ों तथा शरीर के घावों के ऊपर या पंखों के रूई जैसी संरचना का दिखाई देना।

(ग) आन्तरिक लक्षण – आन्तरिक रोग जनित परिवर्तनों को प्रयोगशाला में मछली के उदर को काट कर देखा जा सकता है।

1. आंत एंव वाह्य भित्ति के बीच गाढ़े मवाद अथवा पानी जैसे द्रव्य का निकलना।
2. जिगर का रंग असामान्य होना।
3. गुदों का टूटा या सड़ा दिखाई देना।
4. आंत में कृमि आदि का मिलना।
5. जिगर, गुर्दा अथवा अन्य आंतरिक अंगों में छोटे–छोटे गांठ दिखाई देना।

स्वस्थ मछली की पहचान – स्वस्थ मछली को पहचानने का एक बहुत आसान तरीका यह है कि मछली को पलट दें, पलटने पर यदि उसकी आंख की पुतली चलती दिखाई दे, तो मछली स्वस्थ है और अगर आंख की पुतली न पलटे, तो मछली रोगी है।

काशीफल या कुम्हड़ा की खेती

निमिशा शेरिल सिंह
बिशप वेशकॉट गर्ल्स स्कूल,
नामकुम,
राँची

प्रो0 (डा0) वी. एम. प्रसाद
विभागाध्यक्ष
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

प्रो0 (डा0) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

कद्दू कुल की सब्जियों में सीताफल अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसके बड़े तथा गूदेदार, फल पके तथा कच्चे दोनों रूपों में सब्जी के लिए उपयोग में लाये जाते हैं, सीताफल को सब्जी तथा कोफता के अलावा टमाटर के साथ मिलाकर केचप भी बनाते हैं। इसकी कोमल पत्तियां तथा तने के अग्र भाग एवं फूलों को भी सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। फल में विटामिन ए, बी और सी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। भारत में इसकी खेती बहुत ही पुराने समय से होती चली आ रही है। इसे सामान्य तापक्रम पर कई महीनों तक भण्डारित किया जा सकता है। इसका वानस्पतिक नाम कुकरबिटा मास्चेटा है। इसे कुम्हड़, कदुवा, सीताफल आदि के नाम से जाना जाता है। लम्बे समय तक भण्डारण क्षमता होने के कारण इसकी खेती बहुतायत से की जाती है। हमारे यहॉ इसकी खेती गर्मी और बरसात दोनों मौसमों में की जाती है।

जलवायु :– कुम्हड़ा की फसल को लम्बे गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। इसकी फसल उन स्थानों पर प्रमुखता से उगाई जाती है जहाँ तापक्रम 25 से 40 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है। इसके बीजों के जमाव के लिए 20–25 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। यदि तापमान 17 डिग्री सेल्सियस से कम रहता है, तो बीजों का अंकुरण नहीं होता है। यदि दिन का तापमान 42 सेल्सियस से अधिक रहता है, तो इसके फूल गिरने लगते हैं तथा फलों का विकास कम होता हैं।

भूमि तथा उसकी तैयारी :– कुम्हड़ा की खेती लगभग हर प्रकार की भूमि में की जा सकती है, लेकिन अच्छी खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली भुरभुरी एवं कार्बनिक पदार्थयुक्त दोमट भूमि उपयुक्त होती है। इसकी खेती के लिए भूमि का पी.एच. मान 6.5–7.5 होना चाहिए। गर्मी की फसल के लिए दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। क्योंकि इसमें नमी अधिक समय तक बनी रहती है। वर्षा ऋतु में हल्की किस्म की भूमि का चुनाव करना चाहिए जिसमें पानी का निकास अच्छा हो। बुवाई से लगभग एक माह पहले खेत को गहरा जोत कर गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट 250–300 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में जुताई के साथ मिला दें। इससे खेत अधिक उपजाऊ होता है तथा खेत में नमी धारण क्षमता बढ़ती है और बीज का जमाव भी अच्छा होता है। बुवाई के पहले तीन चार बार खेत की जुताई करके तथा पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी तथा समतल कर लेना चाहिए, जिससे सिंचाई का पानी एक समान लग सके।

उन्नतशील किस्में :

1. अर्का चन्दन :– इस किस्म का विकास भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर द्वारा राजस्थान के एक स्थानीय संकलन से चयन करके विकसित किया गया है। इस किस्म को अखिल भारतीय समन्वित सब्जी विकास परियोजना के अन्तर्गत 1987 में भारत के भौगोलिक क्षेत्र–8 में उगाने के लिए अनुमोदित किया गया है। इसके फल आकार में गोल तथा दोनों सिरे पर थोड़ा दबे होते हैं। फल मध्यम आकार के 2–3 किग्रा वजन के हल्के भूरे रंग के होते हैं। गूदा, मोटा, सख्त और चमकीले नारंगी रंग का होता है। इसमें मिठास अच्छी होती है और घुलनशील शर्करा का अंश 8–10 प्रतिशत

होता है। इसमें कैरोटीन की मात्रा 3331 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रति 100 ग्राम होती है। फल में अच्छी सुगन्ध होती है तथा इसकी भण्डारण क्षमता भी अच्छी है। औसत उपज 335 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है ।

2. कोयम्बटूर–1 :– इस किस्म का विकास तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय कोयम्बटूर द्वारा किया गया है। यह एक पिछेती किस्म है। इसके फल आकार में बड़े 7–8 किग्रा वजन के होते हैं। फल आकार में गोल होते हैं और एक बेल पर 7–9 फल लगते हैं। फल पकने में 175 दिन का समय लगता है। इसकी औसत उपज 250–300 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

3. कोयम्बटूर–2 :– इस किस्म को भी तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा विकसित किया गया है। यह एक अगेती किस्म है। जिसमें बुवाई के 135 दिन बाद फल तैयार हो जाते हैं। इसके फल छोटे आकार के होते हैं और प्रत्येक फल का औसत वजन 2 किग्रा से अधिक नहीं होता। फलों के ऊपर हल्के खाचें पाये जाते हैं। गूदे का रंग नारंगी होता है। एक बेल में औसतन 10–15 फल लगते हैं। इसकी औसत उपज 225–250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

4. पूसा विश्वास :– इस किस्म को एक स्थानीय संकलन से चयन करके भारतीय कृषि अनुसंधान नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। इसकी लतायें काफी बढ़ने वाली तथा पत्तियां गहरे रंग की होती हैं। जिन पर कहीं–कहीं सफेद रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। फल हल्के भूरे रंग के और गोल आकार के होते हैं। गूदा मोटा और पीले रंग का होता है। प्रत्येक फल का औसत वजन 5 किग्रा होता है। इसके फलों को पकने में 120 दिन का समय लगता है। इसकी औसत उपज 230 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

5. सी.एम. 14 :– इस किस्म को स्थानीय संकलन से चयन द्वारा केरल कृषि विश्वविद्यालय वेल्लानीकारा से विकसित किया गया है। इसकी बेलें फैलने वाली होती हैं। फल चपटे गोल आकार के और लगभग 6 किग्रा वजन के होते हैं। फल हरे रंग के होते हैं जिन पर उथली नालियां बनी होती हैं। गूदा मोटा होता है। प्रति बेल इसकी औसत उपज 15.38 किग्रा पायी गयी है।

6. पूसा विकास :– यह मध्यम या बौनी लता वाली किस्म है, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से विकसित किया गया है। इसकी पत्तियां गोलाकार, चिकनी, बिना रोयें के तथा हल्के हरे रंग की होती है जिस पर जगह–जगह पीले रंग के धब्बे पाये जाते हैं। पीले धब्बे उभरी हुई इपीडर्मल कोशिकाओं से बनते हैं, जो इस किस्म का आनुवांशिक रूप से अप्रभावी जीन मार्कर है। इसके फल छोटे और चपटे होते हैं। फल औसत वजन 2 किग्रा है। फल का गूदा पीला होता है। इसे उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में वसन्त–गर्मी में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 30 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

7. पूसा हाइब्रिड 1 :– उत्तरी मैदानी इलाकों के लिए इसे तैयार किया गया है। उपज 520 कुन्टल प्रति हेक्टेयर तक मिलती है। फल सुनहरी रंग लिए हुए होते हैं। वजन 4 किलो के आसपास रहता है।

काशीफल की अन्य किस्में :– बीएसएस 987, बीएसएस 988, कल्यानपुर पम्पकिन–1, नरेन्द्र अग्रिम, नरेन्द्र अमृत, आईआईपीके–226, संकर नरेन्द्र काशीफल–1।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन :– साधारणतया खेती की तैयारी के समय गोबर की सड़ी खाद 250–300 कुंतल प्रति हेक्टेयर देना लाभप्रद रहता है। काशीफल की अधिक उपज के लिए 80–100 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा फास्फोरस तथा 40 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा को अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए तथा शेष 2/3 नत्रजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर टापड्रेसिंग के रूप में प्रथम बार बुवाई के 25–30 दिन बाद तथा 40–45 दिन पर फूल आने के समय देना चाहिए तथा नालियों/थालों की गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

बुवाई का समय :– मैदानी क्षेत्रों में बुवाई ग्रीष्म ऋतु के लिए फरवरी–मार्च तथा वर्षा ऋतु के लिए जून–जुलाई में वह पहाड़ी क्षेत्रों के लिए मार्च से अप्रैल तक करते हैं।

बीज की मात्रा :– एक हेक्टेयर खेत की बुवाई के लिए 7–8 किग्रा बीज की आवश्यकता पड़ती है। अनुमानतः 100 ग्राम में लगभग 600 बीज होते हैं।

बीज उपचार :– फफूंदीनाशक रोगों के कारण कभी–कभी फसल में काफी हानि हो जाती है। इन रोगों से फसल

को बचाने के लिए पूर्व में ही सावधानी बरतनी चाहिए। इसके लिए थीरम या कार्बेन्डाजिम की 2.5 ग्राम मात्रा से प्रति किग्रा बीज को उपचारित करना लाभदायक होता है।

बुवाई की विधि :– अच्छी प्रकार से तैयार किये गये खेत में 2.25 मीटर की दूरी पर 45–50 सेमी चौड़ी नाली बनाकर नालियों के दोनों किनारों पर 75 सेमी की दूरी पर बुवाई करते हैं। एक स्थान पर 2–3 बीज तथा 3–5 सेमी की गहराई पर रोपाई करनी चाहिए।

विरलीकरण :– बुवाई के उपरान्त पौधे निकल आने पर विरलीकरण कर दिया जाता है तथा एक स्थान पर एक ही स्वस्थ पौधा छोड़ दिया जाता है। विरलीकरण करते समय किसी तेज धारदार खुरपी या चाकू से अनावश्यक पौधों को काट दिया जाता है। विरलीकरण करने के लिए पौधों को उखाड़ने की अपेक्षा खुरपी से निकालना अच्छा माना जाता है, क्योंकि इससे स्वस्थ पौधों की जड़ों को कोई नुकसान नहीं होता है।

शस्य क्रियायें एवं खरपतवार नियंत्रण :– कुम्हड़ा के जमाव से लेकर शुरुआत के 25–30 दिनों तक निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। रासायनिक खरपतवारनाशी के रूप में पेंडीमेथलीन 3.3 ली0 प्रति हे0 की दर से 1000 ली0 पानी में मिलाकर घोल जमीन के ऊपर बुवाई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करना चाहिए। इससे बुवाई के लगभग 30–35 दिन बाद तक खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

सिंचाई :– सीताफल की खेती जब बरसात में की जाती है, उस समय फसल की सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लेकिन मौसम जब सूखा रहता है, तो आवश्यकतानुसार पानी लगाते हैं। ग्रीष्मकाल में उगाई जा रही फसल में 4–7 दिन के अंतराल पर नालियों में सिंचाई करते रहना चाहिए। पौधे की तीन अवस्थाओं पर तना बढ़ते समय, फूल आने से पहले तथा फल विकास की अवस्था पर पानी की कमी होने पर, उपज में भारी कमी हो जाती है। इसलिए उपयुक्त तीन अवस्थाओं पर पानी की कमी नहीं होने देना चाहिए। फल पकने पर सिंचाई नहीं करते हैं। जिससे कुम्हड़ा भण्डारण की क्षमता में बढ़ोत्तरी हो जाती है।

फलों की तुड़ाई व पैदावार :– बाजार मांग की आवश्यकतानुसार फल की कच्चे और पके दोनों अवस्थाओं में तुड़ाई करते हैं। फसल की पहली तुड़ाई बुवाई के 75–80 दिनों पर करते हैं। कच्चे फल के लिए फल लगने के 20–25 दिन के बाद तुड़ाई करते हैं। इस फल को किसी तेज धारदार, चाकू से इस प्रकार पौध से अलग करना चाहिए कि पूरे पौध को झटका न लगे अन्यथा पूरा पौधा सूख सकता है। इसकी औसत उपज प्रति हेक्टेयर 400–450 कुन्टल होती है। पके फलों को सामान्य तापक्रम पर काफी लम्बे समय तक रखा जा सकता है। आवश्यकता के आधार पर बाजार भेजकर बेचा जा सकता है।

पृष्ठ सं० 10--का शेष

घाव इत्यादि जटिलताएं भी हो जाती हैं। थन के छालों से थनैला रोग भी हो जाता है। स्वस्थ पशुओं में श्वांस लेने में कठिनाई होती है। यह रोग 15–30 दिनों तक रहता है।

उपचार :–

(1) उचित समय पर अच्छे पशु चिकित्सक के द्वारा पशुओं का उपचार करवायें।
(2) बीमार पशुओं को बाजरे, मक्का व ज्वार का दलिया बनाकर खिलायें, जिसमें नमक और गुड़ मिलाकर पकाकर दलिये के रूप में पशुओं को दें। 2 किग्रा0 दलिया + 1 किग्रा0 गुड़ + 50 ग्राम नमक को 4–5 लीटर पानी में उबालकर दलिये के रूप में खिलायें।
(3) मुलायम पत्तीदार चारों का सेवन करायें।

बचाव :–

(1) 1–3: के कॉपर सल्फेट के घोल से समय–समय पर खुरों की सफाई करते रहें।
(2) इस बीमारी से बचाव के लिये पशुओं को एफ0 एम0 डी0 पोलीवेलेंट वेक्सीन के वर्ष में दो बार टीके अवश्य लगवाने चाहिए।
(3) रोगग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
(4) रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशुओं की खरीददारी नहीं करना चाहिए।
(5) पशुशाला को साफ–सुथरा रखना चाहिए।
(6) खुरपका–मुंहपका बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर गड्ढे में गाड़ देना चाहिए।

मेंहदी की वैज्ञानिक खेती

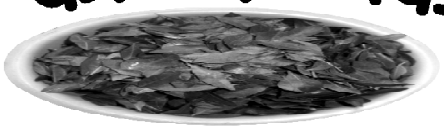

डा० शिशिर कुमार
विषय वस्तु विशेषज्ञ
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

डा० शैलेन्द्र कुमार सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

प्रो० (डा०) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

मेंहदी एक बहुवर्षीय झाड़ीदार फसल है जिसे व्यवसायिक रूप से पत्ती उत्पादन के लिए उगाया जाता है। मेंहदी प्राकृतिक रंग का एक प्रमुख स्रोत है। शुभ अवसरों पर मेंहदी की पत्तियों को पीस कर सौन्दर्य के लिए हाथ व पैरों पर लगाते हैं। सफेद बालों को रंगने के लिए भी मेंहदी की पत्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसका सिर पर प्रयोग करने से रुसी (डेंड्रफ) की समस्या भी दूर हो जाती है। इसकी पत्तियां चर्म रोग में भी उपयोगी है। गर्मी के मौसम में हाथ व पैरों में जलन होने पर भी मेंहदी की पत्तियों को पीसकर लगाया जाता है। इसका उपयोग किसी भी दृष्टिकोण से शरीर के लिए हानिकारक नहीं है। मेंहदी की हेज घर, कार्यालय व उद्यानों में सुन्दरता के लिए लगाते है। मेंहदी शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बहुवर्षीय फसल के रूप में टिकाऊ खेती के सबसे अच्छे विकल्पों में से एक है। मेंहदी की खेती पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है।

प्रजातियां : कुछ अनुसंधान संस्थानों व कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा मेंहदी में आनुवांशिक सुधार कार्यक्रम के तहत उच्च उत्पादन क्षमता वाले पौधों की पहचान की गई है, लेकिन अधिकारिक तौर पर अभी तक कोई उन्नत किस्म विकसित नहीं हुई है। अतः स्थानीय फसल से ही स्वस्थ, चौड़ी व घनी पत्तियों वाले एक जैसे पौधों के बीज से ही पौध तैयार कर फसल की रोपाई करें।

खेत की तैयारी : वर्षा ऋतु पूर्व खेत की मेड़बन्दी करें। अवांछनीय पौधों को उखाड़कर लेजर लेवलर की सहायता से खेत को समतल करें। इसके बाद डिस्क व कल्टीवेटर से जुताई कर भूमि को भुरभुरा बना लेवें।

खाद व उर्वरक : खेत की अंतिम जुताई पर 10–15 टन सड़ी देशी खाद व 250 किलो जिप्सम प्रति हेक्टर की दर से भूमि में मिलावें तथा 60 किलो नत्रजन व 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टर की दर से खड़ी फसल में प्रति वर्ष प्रयोग करें। फास्फोरस की पूरी मात्रा व नत्रजन की आधी मात्रा पहली बरसात के बाद निराई गुड़ाई के समय भूमि में मिलावें व शेष नत्रजन की मात्रा उसके 25–30 दिन बाद वर्षा होने पर देवें।

प्रवर्धन : मेंहदी को सीधा बीज द्वारा या पौधशाला में पौध तैयार कर रोपण विधि से या कलम द्वारा लगाया जा सकता है। हेज लगाने के लिए प्रवर्धन की तीनों विधियां काम में ली जाती हैं। लेकिन व्यवसायिक खेती के लिए पौध रोपण विधि ही सर्वोत्तम है।

पौध तैयार करना : एक हेक्टर भूमि पर पौध रोपण के लिए करीब 6 किलो बीज द्वारा तैयार पौध पर्याप्त होती है। इस हेतु 1.5 X 10 मीटर आकार की 8–10 क्यारियां अच्छी तरह बनाकर मार्च – अप्रैल माह में बीज की बुवाई करें। मेंहदी का बीज बहुत कठोर व चिकना होता है तथा सीधा बोने पर अंकुरण कम मिलता है। अतः अच्छा अंकुरण पाने के लिए बुवाई से करीब एक सप्ताह पहले बीज को टाट या कपड़े के बोरे में भरकर पानी के टेंक में भिगोंवें व टेंक का पानी प्रतिदिन बदलते रहें। इसके बाद बीज को कार्बेन्डाजिम 2.50 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर छिटकवां विधि से बुवाई करें।

पौध रोपण : जुलाई माह में अच्छी वर्षा होने पर पौधशाला से पौधे उखाड़कर सिक्रेटियर द्वारा थोड़ी–थोड़ी जड़ व शाखाऐं काट दें। खेत में नुकीली खूटी या

हलवानी की सहायता से 30 X 50 X 50 व 50 सेमी की दूरी पर पंक्तियों में छेद बनावें तथा प्रति छेद 1–2 पौधे रोपकर जड़ें मिट्टी व अच्छी तरह दबा दें। पौध लगाने के बाद अगर वर्षा न हो तो सिंचाई कर देनी चाहिए। मेंहदी में 30 X 250 सेमी की दूरी को ट्रैक्टर चलित यंत्रों द्वारा समय पर निराई गुड़ाई कर प्रभावी रूप से खरपतवार नियंत्रण व क्षेत्र नमी संरक्षण के साथ–साथ पतझड़ की समस्या में कमी व पत्ती उत्पादन में सुधार के उद्देश्य से उपयुक्त पाया गया है।

अन्तः फसलीय पद्धति : मेंहदी की 2 पंक्तियों के बीच खरीफ व रबी ऋतु में दलहन तथा अन्य कम ऊँचाई वाली फसलें उगाकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अन्तः फसल के उत्पादन एंव आमदनी की दृष्टि से खरीफ में मूंग व रबी में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर इसबगोल व असालिया सबसे उपयुक्त फसलें पायी गयी हैं।

निराई–गुड़ाई : मेंहदी के अच्छे फसल प्रबन्धन में निराई गुड़ाई का महत्वपूर्ण स्थान है। जून–जुलाई में प्रथम वर्षा के बाद बैलों के हल व कुदाली से निराई गुड़ाई कर खेत को खरपतवार रहित बना लेवें। गुड़ाई अच्छी गहराई तक करें ताकि भूमि में वर्षा का अधिक से अधिक पानी संरक्षित किया जा सके।

कटाई : पत्ती उत्पादन व गुणवत्ता की दृष्टि से पुष्पावस्था कटाई के लिए सर्वोत्तम है। आमतौर पर मेंहदी की कटाई सितम्बर–अक्टूबर माह में की जाती है। कटाई तेज धार वाले हसिया से हाथ में चमड़े के दस्ताने पहनकर की जाती है। फसल काटने के 18–20 घंटे तक मेंहदी को खुला छोड़ें तथा इसके बाद एकत्र कर ढेरी बना लें। ऐसा करने से मेंहदी की गुणवत्ता में सुधार आता है। मेंहदी सूखने पर हाथ या डण्डे से पीटकर/झाड़कर पत्तियों को अलग कर लें। पत्तों की झड़ाई का कार्य पक्के फर्श पर करना चाहिए।

उपज : प्रथम वर्ष मेंहदी की उपज क्षमता का केवल 5–10 प्रतिशत उत्पादन ही प्राप्त हो पाता है। मेंहदी की फसल रोपण के 3–4 साल बाद अपनी क्षमता का पूरा उत्पादन देना शुरू करती है, जो करीब 20–30 वर्षों तक बना रहता है। सामान्य वर्षा की स्थिति में अच्छी तरह प्रबन्धित फसल से प्रति वर्ष करीब 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टर सूखी पत्तियों का उत्पादन होता है। मेंहदी के खेत में कुछ पौधे दीमक कीट, जड़गलन बीमारी व अन्य कारणों से सूख जाते हैं। जिनकी जगह समय–समय पर पौध रोपण कर देना चाहिए अन्यथा उत्पादन कम हो जाता है।

पृष्ठ सं० 12--का शेष

है। इसके अतिरिक्त घुमावदार ड्रम जिसकी सतह खुरदरी हो, गांठों को भरकर चलायें। इससे गांठों की सफाई हो जाती है।

4. **गांठों की रंगाई** :– गांठों को अधिक आकर्षक बनाने एवं उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए गांठों की रंगाई अवश्य करें। इसके लिये पालिस की गयी गांठों को साफ बोरी में डालकर 4–5 किग्रा हल्दी के पाउडर के साथ अच्छी तरह चलायें। इससे गांठों पर रंग चढ़ जाता है। या और अधिक आकर्षक रंग लाने के लिए एक कुन्तल गांठों की रंगाई हेतु 500 ग्राम अरण्डी का तेल, 2.50 किग्रा हल्दी का पाउडर, 400 ग्राम फिटकरी, 30 ग्राम सोडा (सोडियम बाई सल्फेट) एवं 30 ग्राम सान्द्र नमक के अम्ल के घोल की आवश्यकता होती हैं। घोल बनाने के लिये पहले 7 ली0 पानी में हल्दी के पाउडर को घोलें फिर सोडा, फिटकरी एवं सान्द्र नमक के अम्ल को मिलाऐं। अन्त में अरण्डी का तेल मिलाकर घोल तैयार कर लें।

गांठों को बांस की टोकरी में दो तिहाई भरें तथा उस पर घोल की आवश्यक मात्रा को डालकर टोकरी को तब तक हिलाते रहें, जब तक गांठों पर रंग की परत न चढ़ जाये। इसी प्रकार यदि ड्रम का प्रयोग कर रहे हों, तो गांठों को डालकर उस पर रंग वाले घोल को डालकर अच्छी तरह चलायें। जब गांठों पर रंग की परत चढ़ जाये, तो निकालें। गांठों को साफ फर्श या त्रिपाल पर अच्छी तरह सुखा लें।

इस प्रकार 100 किग्रा कच्ची गांठों से शोधन के उपरान्त 20–30 किग्रा सूखी हल्दी प्राप्त हो जाती है।

गुलकंद सेहत भी स्वाद भी

विवेक कुमार सिंह
शोध छात्र
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

बालाजी विक्रम
अध्यापन सहायक
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

प्रत्युश वर्मा
शोध छात्र
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

प्रो० विपिन एम० प्रसाद
विभागाध्यक्ष
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

हमारे रसोई घर मे कई तरह की औषधि पायी जाती है। जिनका प्रयोग अगर हम सुनियोजित तरीके से करें, तो स्वस्थ और निरोगी काया के मालिक बन सकते हैं। इन्हीं में से एक है– गुलकंद, इसे बनाना बहुत ही आसान काम है, पर यह बहुत स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्द्धक है।

गुलकंद बनाने की बहुत ही सामान्य विधि इस प्रकार है –

सामग्री व मात्रा :– गुलाब की पंखुड़ियाँ 1 किग्रा, चीनी 2 किग्रा, एक सीसे का जार।

विधि :– इसके लिए सुगन्धित देशी गुलाब का ही चुनाव करें। सबसे पहले पंखुड़ियों को निकाल कर अच्छी तरह धो लेना चाहिए तत्पश्चात पानी निथारने हेतु किसी जालीदार बर्तन में रखना चाहिए। जार को अच्छी तरह से धो कर पोंछ लें। एक परत गुलाब की पंखुड़ियाँ बिछा दें फिर चीनी की एक परत डालें और इस प्रकार जार को भर देना चाहिए। अब इसे रोज सुबह धूप में रखे व शाम को हटा लें। यह प्रक्रिया तीन से चार सप्ताह तक चलती रहेगी। अब आप देखेगें कि चीनी व पंखुड़ियाँ घुल मिल गई है।

गुलकंद की गुणवत्ता व सुगंध बढ़ाने के लिए सौफ, सोंठ, इलायची प्रयोग कर सकते है। इसके अलावा अल्प मात्रा में चाँदी (सिल्वर) भी मिला सकते है।

गुलकंद को गुलकंद शेक व गुलकंद पेड़ा भी बना सकते है। गुलकंद शेक हेतु 100 मिली0 उबला हुआ दूध को ठंडा करके तीन से चार चम्मच गुलकंद मिला लें और काजू या बादाम से सजाकर मेहमानो को परोसें।

गुलकंद के लाभ :– यह पारंपरिक रुप से ठण्डे शर्बत या टानिक के तौर पर सदियों से प्रयोग होता आया है। परंतु मुगल काल में इसका प्रयोग चरम पर था। इसका प्रयोग लू लगने पर, खुजली होने पर, याद्दाश्त बढ़ाने हेतु आंखों के इलाज इत्यादि में होता आया है।

राष्ट्रीय आयुर्वेद औषधीय संस्थान की सूची के अनुसार गुलकंद के कई औषधीय उपयोग की सिफारिश की गई है।

- यह अम्लता को कम करता है। क्योंकि यह ठण्डा प्रकृति का होता है व गैस रोगियों के लिए लाभदायक है।
- यह मूत्र निष्कासन क्रिया को ठीक करता है। वे लोग जिन्हे मूत्र विसर्जन में समस्या आती है। उन्हें इसका उपयोग रोजाना करना चाहिए।
- यह मासिक चक्र को नियमित करने में सहायक होता है व मासिक धर्म शुरु होने व रजोनिवृति के समय होने वाले दर्द को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार यह किशोरियों से लेकर प्रौढ़ स्त्रियों तक हर उम्र में उपयोगी है।
- गुलकंद का प्रयोग स्वप्न दोष जैसे विकार को नियन्त्रित करने में किया जाता है।
- गुलकंद हृदय के रोगियों के लिए भी लाभदायक है। इसके साथ साथ हाइपरटेंशन, हाइब्लडप्रेशर व दिल धड़कने की गति को नियन्त्रित करता है।

- अगर मितली (उल्टी) या जी मिचला रहा हो, तो गुलकंद खाने से आराम मिलता है।
- गुलकंद पौरुष शक्ति को बढ़ाता है। यह प्रयोगों में सिद्ध हो चुका है कि गुलाब में पाये जाने वाले तत्व काम–इच्छा को बढ़ाते है। शायद यही कारण है कि गुलाब को प्रेम का प्रतीक माना गया है।
- गुलकंद मुख के अल्सर को ठीक करता है। इसके लिए 20 ग्राम गुलकंद को 250 मिली पानी में उबाल कर गरारा करना चाहिए।
- गुलकंद का महत्व गर्मी के मौसम में बढ़ जाता है। गर्मियों में बच्चों की नाक से खून आने लगता है। इससे बचने के लिए गुलकंद का सेवन करें।
- बढ़ती उम्र में हथेलियों व तलुओं की जलन आम बात होती है। इससे बचने के लिए गुलकंद रामबाण इलाज है।
- यह चिड़चिड़ेपन से दूर रख कर मन को शान्त रखने में सहायक है।
- अगर यह कम मात्रा में लिया जाए, तो जल्दी–2 दस्त आने की समस्या खत्म हो जाती है। वहीं अगर अधिक मात्रा में खाया जाय, तो यह पेट को साफ करता है। इस प्रकार यह दस्त रोकने व पेट साफ करने दोनों में सहायक है।
- गुलकंद में प्रयोग किया जाने वाले मसाले जैसे इलायची, सोंठ, सौंफ इत्यादि भी लाभदायक है।
- गुलकंद का प्रयोग कर्क रोग इलाज करा रहे मरीजों व अन्य दवाओं के अतिरिक्त प्रभाव को कम करता है। जैसे कि कीमोथेरेपी से होने वाली बाल झड़ने की समस्या को कम करता है।

इन सभी लाभों का अनुभव तब किया जा सकता है। जबकि इसे 10–12 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से प्रयोग किया जाए। वैसे तो गुलकंद का स्वाद ही इसे खाने की सिफारिश के लिए पर्याप्त है। फिर भी यह दूध के साथ बच्चों को दिया जाए, तो वे दूध बिना ना नुकुर के पी जाते है, बल्कि और ज्यादा पीने की इच्छा रखते है। इसे मिल्क शेक के अलावा केक और मिठाई को डिजाइन करने में भी किया जाता है।

मधुमेह (डायबिटीज) के रोगियों को इसे न खाने की सलाह दी जाती है। इसके अलावा अत्यधिक मोटे व्यक्ति को भी कम मात्रा में सेवन करना चाहिए।

पृष्ठ सं० 16--का शेष

करेला–1, कल्यानपुर सोना आदि भी अच्छी किस्में है।

बुआई का समय :– मैदानी क्षेत्रों में बुआई ग्रीष्म ऋतु के लिये फरवरी–अप्रैल तक तथा वर्षा ऋतु के लिये जून–जुलाई तक व पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च से जून तक करते है।

बीज की मात्रा :– एक हे0 खेत की बुआई के लिये 5–6 किग्रा0 बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बुआई :– अच्छी प्रकार से तैयार किये गये खेत में 2–2.5 मी0 की दूरी पर 40–50 सेमी0 चौड़ी नाली बनाकर नालियों के दोनों किनारों (मेड़ों) पर 45–60 सेमी0 की दूरी पर बुआई करते है। एक स्थान पर 2–3 बीज, 3–5 सेमी0 की गहराई पर बोना चाहिये।

सिंचाई :– सिंचाई, मिट्टी की किस्म एवं जलवायु पर निर्भर करती है। खरीफ ऋतु में खेत की सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती परंतु वर्षा न होने पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अधिक वर्षा के समय पानी के निकास के लिये नालियों का होना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा फसल नष्ट होने की काफी सम्भावनायें होती है। गर्मियों में अधिक तापमान होने के कारण 4–5 दिन पर सिंचाई करना चाहिये। पानी की कमी होने पर पत्तियॉ मुरझा जाती है।

फलों की तुड़ाई :– जब फलों का रंग गहरे हरे से हल्का हरा पडना शुरू हो जाये तो फलों की तुड़ाई करने के लिये उत्तम माना जाता है। फलों की तुड़ाई एक निश्चित अंतराल पर करते रहना चाहिये ताकि फल कड़े न हों अन्यथा उनकी बाजार में मांग कम होती हैं और साथ ही पौधों के जीवनकाल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बोने के 60–75 दिन बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं। यह कार्य कर तीसरें दिन करना चाहिये।

उपज :– करेले की उपज प्रति हे0 लगभग 150 कु0 प्राप्त की जा सकती है।

विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नॉलाजी एण्ड साइंसेज़

इलाहाबाद - २११००७

Phone- 0532-2684278

हमार गाँव

सदस्यताफार्म

1. नाम :– .....

2. पद :– .....

3. विभाग :– .....

4. पता :– कार्यालय.....

.....

निवास.....

5. दूरभाष :– लैण्डलाइन– कार्यालय.....निवास.....

मोबाइल.....

6. वार्षिक सदस्यता शुल्क का भुगतान :– डिमाण्ड ड्राफ्ट/चेक नं0.....दिनांक.....

बैंक .....

धनराशि :– *(उचित स्थान पर सही का चिन्ह लगायें। नियम–8 देखें)*

रुपये एक सौ मात्र (रु0 100/–)

रुपये दो सौ मात्र (रु0 200/–)

''शिएट्स पब्लिकेशन एकाउन्ट'' के पक्ष में देय।

7. वार्षिक सदस्यता अवधि वर्ष.....के लिए ।

हस्ताक्षर

दिनांक.....

नाम.....

यहां से काटिये — यहां से काटिये

नियम एवं शर्तें

लेखक ध्यान दें –

1. हमार गाँव त्रैमासिक पत्रिका के लिए लेख केवल सरल हिन्दी भाषा में ही स्वीकार्य किये जायेंगे।
2. लेख पेपर में केवल एक तरफ डबल स्पेस में टाइप अथवा स्पष्ट हस्तलिखित ही मान्य होंगे।
3. लेख कृषकों, उनके परिवारों के हित में कृषि विज्ञान एवं गृह विज्ञान पर आधारित होने चाहिए।
4. लेख चार पेज (साईज 7.25 X 9.50) से अधिक न हो।
5. हमार गाँव के सदस्यों के ही लेख पत्रिका में प्रकाशित किये जाते हैं।
6. सदस्यता फार्म विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग में उपलब्ध हैं।
7. वार्षिक सदस्यता हेतु शुल्क रुपये एक सौ (रु0 100/–) मात्र एवं संस्थान के लिए सदस्यता शुल्क रुपये दो सौ (रु0 200/–) मात्र निर्धारित है। (डाकखर्च अतिरिक्त)।
8. हमार गाँव की सदस्यता अवधि प्रत्येक वर्ष जनवरी से दिसम्बर अन्त तक होगी।
9. विद्यार्थियों द्वारा प्रेषित लेख उनके सम्बन्धित विभाग के विभागाध्यक्ष से अग्रसारित होना आवश्यक है।
10. लेख की सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेखक की होगी। लेख के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग, शिएट्स, इलाहाबाद किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं होगा।

** शैक्षणिक संस्थानों जैसे संगठन/विश्वविद्यालय/महाविद्यालयों/स्कूलों पर लागू।*